रेडियो के लिये कैसे लिखें

प्रस्तावना

डा० बा० वि० केसकर

मन्त्री सूचना और ब्रॉडकास्टिंग भारत सरकार

लेखक

अमरनाथ पचल

एम० ए० एल० एल० बी०

सहायक संचालक सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय,

राजस्थान, जयपुर।

प्रकाशक

आर्टों ऑफ इंडिया—जयपुर शाखा

वितरक
राजकमल प्रकाशन लिमिटेड
• दिल्ली • बम्बई • नई दिल्ली।

मुद्रक
रश्मि मुद्रणालय, जयपुर



प्रस्तावना

रेडियो के लिये लिखना एक विशेष कला है। रेडियो आजकल के युग में एक बड़ा प्रभावशाली साधन सांस्कृतिक कार्यों के लिये हो गया है। श्री जगन्नाथ माथुर ने इस सम्बन्ध में लिख कर बहुत उपयोगी काम किया है और उन्होंने यह दिखलाने की कोशिश की है कि रेडियो के लिये लिखने के लिये एक प्रकार की विशेष योग्यता की आवश्यकता है। मुझे आशा है कि उनकी यह पुस्तक भविष्य के लेखकों के लिये एक उपयोगी साधन होगी।

(बा० वि० केसकर)

नई दिल्ली,
दिनांक १८ मार्च, १९५५।

पुस्तक की कहानी

रेडियो में लिखने, बोलने, अभिनय करने और गाने के लिए अपार क्षेत्र है।

ऑल इण्डिया रेडियो के २२ स्टेशनों से प्रतिमास लगभग १००० घंटों का कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है। इतने विस्तृत कार्यक्रम की खाना-पूर्ति के लिए प्रतिमास हजारों लोगों की सेवाओं की आवश्यकता होती है। सभी वर्गों और वय के लोग रेडियो के कार्यक्रम में भाग ले सकते हैं, लेते हैं।

किन्तु इस व्यापक कार्यक्रम में अपना स्थान बनाने के लिए यह आवश्यक है कि आपमें रेडियो से बोलने, अभिनय करने, गाने अथवा उसके लिए लिखने की प्रबल इच्छा हो। आप यह जानने को तत्पर हो जायें कि रेडियो के लिए—

- क्या लिखा जाय?

  और क्या न लिखा जाय?

- कैसे लिखना चाहिये?

- और कैसे न लिखना चाहिये?

इसके लिए विशेष सिद्धान्त हैं, नियम हैं, निषेध हैं। इन नियमों और सिद्धान्तों का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर आप रेडियो के कार्यक्रम में भाग लेकर धन, प्रसिद्धि, सफलता और बौद्धिक मनोरंजन प्राप्त कर सकते हैं।

राजस्थान रेडियो जयपुर में जब मैं डिप्टी डाइरेक्टर के पद पर नियोजित किया गया तो मुझे पग पग पर इस बात का अभाव खटकता था

कि इसमें महत्व के वैज्ञानिक विषय पर कोई साहित्य देश में सहज-सुलभ नहीं है। वैदिक हिन्याल नागपुर के शब्दों में 'भजन-साहित्य के सब रूपों के सम्बन्ध में बहुत सा साहित्य और रचनाएं उपलब्ध हैं किन्तु रेडियो-भजन की कदाचित अवहेलना की गई है। रेडियो से प्रसारित करने की टेकनीक के सम्बन्ध में कुछ पुस्तकें अवश्य हैं किन्तु इस दिशा में बहुत कम लिखा गया है-जो रेडियो लेखकों के लिए उपयोगी हो सकता है।' भारतवर्ष में यह विशेष रूप से सत्य है। सम्भवतया यहाँ पर रेडियो से प्रसारित करने के टेकनीक अथवा रेडियो से प्रसारित होनेवाली रचनाओं और प्रसारित प्रोग्राम की आलोचना करने का ज्ञान प्रदान करनेवाली पुस्तक की रचना नहीं हुयी है।

इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए इस पुस्तक की रचना की गयी है। इसकी एक विशेषता और है। इसमें रेडियो कहानी और साधारण कहानी रेडियो रूपक और साधारण नाटक तथा साहित्य के अन्यान्य अंगों का एक तुलनात्मक विवरण भी दिया गया है। अतः यह पुस्तक सिनेमा और पत्र पत्रिकाओं के लेखकों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगी। अपने कृपालु पाठकों से पुस्तक के विषय में सुझाव प्राप्ति को मैं अपना परम सौभाग्य समझूंगा।

अंत में दो शब्द उन महानुभावों और संस्थाओं के प्रति भी न कहना
घ्नता होगी जो इस प्रकाशन को सफल बनाने में सहायक हुये हैं। मैं
स्टर बा॰ वि॰ केसकर, मंत्री सूचना और ब्रॉडकास्टिंग भारत सरकार,
प्रति कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने की कृपा की है।
र्ता ऑल इंडिया की जयपुर शाखा के सभापति श्री अमृतलाल जी
न, पुनर्वास मंत्री राजस्थान का भी आभारी हूँ जिन्होंने इस

प्रकाशन की सफलता में बड़ी रुचि ली है। जयपुर के श्री मोहनलाल जी गुप्ता ने इस पुस्तक पर २) का पुरस्कार प्रदान कर हिन्दी-प्रेम का परिचय दिया है। वे भी मेरी बधाई के पात्र हैं। साथ ही मैं ऑल इण्डिया रेडियो दिल्ली रेडियो पाकिस्तान कराची और बी० बी० सी० लन्दन का आभारी हूँ जिन्होंने सामग्री-रिपोर्ट चित्र आदि के उपयोग की स्वीकृति दी है। मैं अपने सभी परिचित तथा अर्द्ध परिचित कलाकारों, मित्रों और सहयोगियों का भी ऋणी हूँ जिन्होंने इस प्रकाशन की प्रेरणा प्रदान की है। इन्हीं शब्दों के साथ

जयपुर
दिनांक १-४-५५

अमरनाथ चंचल

अन्तर्जगत

प्रथम क्षेत्र

रेडियो साहित्य की विशेषताएँ

क

विषय की खोज में

ख

लिखते समय

द्वितीय खंड
रेडियो साहित्य के विभिन्न स्वरूप

— तीन —

रेडियो कहानी कैसे लिखनी चाहिये

चार

गीतों भरी कहानी

पाँच

रेडियो नाटक

प्रथम खण्ड

रेडियो साहित्य की विशेषतायें

विषय की खोज में

"किस विषय पर लिखें ?" रेडियो के लिए लिखने वालों के सामने यह एक मूल और महत्व का प्रश्न होता है। प्रत्येक रचना के निर्माण में यह प्रश्न उठा करता है। चाहे भाषण हो या कहानी नाटक हो या कविता लेखक सर्व प्रथम अपनी रचना के लिए विषय का चुनाव करता है। रेडियो के लिए लिखी जानेवाली रचना का विषय कैसा हो, यह कोई ऐसा प्रश्न नहीं है जिसका उत्तर आपके पास न हो। रेडियो की आवश्यकताओं और प्रभावों के प्रकाश में इसका निर्णय अति सरलता से किया जा सकता है। आप स्वयं ही अपनी रचना के लिए विषय की खोज कर सकते हैं। आवश्यकता इतनी ही है कि आप रेडियो से प्रसारित होने वाले कार्यक्रम के उद्देश्यों और प्रेरणाओं से परिचित हो जायें।

कार्यक्रम की प्रेरणायें

रेडियो का उद्देश्य श्रोताओं के लिए व्यापक सामाजिक शिक्षण और जन-मनोरंजन का कार्यक्रम प्रसारित करना है। इन उद्देश्यों की पूर्ति करनेवाले किसी उपयुक्त विषय पर आप कहानी नाटक कविता, वार्ता, आदि की रचना कर सकते हैं। "निर्वाचन में वोट" के महत्व से लेकर दांतों और कमरे की सफाई तक के विषय पर रचनाएं तैयार की जा सकती हैं। ऐसा करने से श्रोताओं की ज्ञान-वृद्धि और चरित्र का विकास होता है। अर्थात् सामाजिक शिक्षा के दो महत्वपूर्ण उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है। इतनी सावधानी रखने पर भी रेडियो स्टेशन से आपकी रचना अस्वीकृत कर लौटाई जा सकती है। कारण यह कि आपकी रचना का विषय सामाजिक शिक्षा अथवा जन-मनोरंजन से संबंधित होते हुए भी रेडियो की अन्य आवश्यकताओं और

नियमों से पूरा पूरा मेल न खाता हो । अतः आपका इन आवश्यकताओं *और नियमों में भी अवगत हो जाना अनिवार्य है जिससे आप रचना का* विषय रेडियो की सभी आवश्यकताओं के अनुकूल चुन सकें ।

राष्ट्रीय जीवन से

भारत का रेडियो देश की जनता की प्रगति का वाहन है । यह देश में बसे अपने श्रोताओं की सामाजिक आर्थिक औद्योगिक राजनीतिक साहित्यिक और सांस्कृतिक समस्याओं और आवश्यकताओं की *पूर्ति के लिए कार्यरत है । इन्हीं उद्देश्यों से प्रेरित होकर यह उचित विषयों* पर वार्ताओं नाटकों कहानियों आदि के प्रसारण का आयोजन करता है । लेखक देश के समस्याओं और आवश्यकताओं का अध्ययन कर सकता है । उन पर वह अपनी रचना लिख सकता है । चतुर लेखक जब देश या राज्य *में अन्न-संकट होता है तब अन्न-वृद्धि पर अपनी रचना तैयार करता है ।* ऐसी दशा में रेडियो स्टेशन भी उस रचना को स्वीकार करने के लिए तत्पर रहता है । इसी प्रकार अन्य क्षेत्रों के विषयों पर लिखित कार्यक्रमों का भी वहां पूर्ण स्वागत किया जाता है । रचना के विषय का सामयिक होना अति अनिवार्य है । यहां मुझे राजस्थान रेडियो जोधपुर की एक घटना याद आ रही है । एक बार एक लेखक ने वस्त्र-उद्योग पर एक रचना रेडियो स्टेशन को भेजी । रेडियो अधिकारियों ने रचना को "समय के अनुकूल नहीं !" समझ कर उसे लेखक को लौटाने का निश्चय किया । दूसरे ही दिन अधिकारियों को राजस्थान राज्य में वस्त्र-उद्योग उद्योग की विकास-योजना के समाचार प्राप्त हुये और इसी अवसर पर राज्य के उद्योग-मन्त्री ने इस विषय पर प्रकाश डाला । अधिकारियों ने उक्त रचना के विषय में अपने प्रथम निर्णय को तुरन्त बदल कर उसे स्वीकार कर लिया । अतः सफलता प्राप्त करने के लिए रेडियो लेखक इसी प्रकार समयानुकूल विषय पर अपनी रचना तैयार करता है ।

सरकार का नियन्त्रण

रेडियो पर सरकार का अधिकार होने का एक परिणाम यह भी निकला कि लेखक वहां से ऐसी रचना प्रसारित नहीं कर सकता जिसमें सरकार की नीति उसकी भावनाओं और राज्य चलाने वाले दल की कटु और खंडनात्मक आलोचना की गयी हो। यद्यपि जनमत के प्रतिनिधि के नाते आल इंडिया रेडियो सभी महत्व की धारणाओं और धाराओं का प्रतिनिधित्व करता है फिर भी यह विवादास्पद राजनीति और राजनीतिक दलों का प्रचार करनेवाले कार्यक्रमों से दूर ही रहता है। फलतः लेखक के लिए राजनीतिक विवाद-ग्रस्त विषय से दूर रहना आवश्यक है। किन्तु इसका यह तात्पर्य भी नहीं कि लेखक को राज्य चलाने वाले दल का समर्थन ही करना पड़ता हो। वह चाहे किसी भी अन्य दल का सदस्य भी क्यों न हो विवाद-हीन राजनीति साहित्य कला और इतिहास आदि के क्षेत्र में अनेकों विषयों पर अपनी रचना प्रसारित कर सकता है।

विज्ञापन नहीं

आल इंडिया रेडियो भारत सरकार का एक विभाग है। कोई व्यक्ति अपने व्यक्तिगत हित के लिए इसका उपयोग नहीं कर सकता। यहां पर व्यक्तियों और व्यावसायिक वस्तुओं का प्रचार वर्जित है। लेखक को इसलिए अपनी रचना में ऐसी बातों का समावेश नहीं करना चाहिए जिसके प्रसारण से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से किसी वस्तु, व्यक्ति या गैर-सरकारी संस्थान के पक्ष अथवा विरोध में प्रचार अथवा विज्ञापन होता हो। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में व्यावसायिक रेडियो स्टेशनों से प्रसारित होने वाली रचनाओं में मनोरंजन के द्वारा व्यावसायिक वस्तुओं का विज्ञापन और प्रचार किया जाता है। रेडियो सीलोन और रेडियो मास्को से भी विज्ञापन के कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। परन्तु भारत में लेखकों को विज्ञापन करने की ऐसी स्वतन्त्रता नहीं है।

भारत में रेडियो सरकारी प्रचार का साधन भी है। अतएव सरकारी योजनाओं और समस्याओं पर लिखी हुयी रचनाओं का भी यहां पर स्वागत किया जाता है। इस प्रकार के कार्यक्रमों में भी विवादास्पद विषयों को छोड़ देना ही ठीक है। आप सरकार के रचनात्मक और निर्माणकारी कार्य क्रम से भी अपना विषय चुन सकते हैं।

सामाजिक प्रतिबन्ध

रचना के विषय के चुनाव और प्रतिपादन के संबंध में एक और प्रतिबन्ध है। रेडियो एक सामाजिक संस्थान है। वह हमारे घर का अंग बन गया है। एक ही परिवार के अनेक लोग उससे प्रसारित होने वाले कार्यक्रम को सुनते हैं। प्रवचन-कार्य में वे आपके अतिथि हैं। इसलिए रचना में जातिगत धर्मगत अथवा वर्गगत भावनाओं और विश्वासों पर आघात करने वाली बातों से दूर रहना आवश्यक है। सभी वय के लोग लेखक की रचना सुनते हैं। श्रोताओं में घर के बच्चे युवा युवतियां और बूढ़े-बजुर्ग भी सम्मिलित होते हैं। लेखक की रचना में ऐसी बातें न हों जो बेटी बाप के सामने और बेटा मां के सामने न सुन सके। उसमें समाज के आचार-विचार का ध्यान रखना अनिवार्य है।

रेडियो के सामाजिक संस्थान होने का एक और प्रतिफल हुआ। रचना में ऐसी बात भी नहीं होनी चाहिये जो व्यक्ति विशेष की खिल्ली उड़ाती हों। व्यक्ति के हकलाने की दयनीय दशा से हास्य का संचार करना उचित नहीं है। आपके हकलाने वाले श्रोता इसका विरोध करेंगे। ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कॉरपोरेशन लन्दन में इस प्रकार का निषेध स्पष्ट तया निर्दिष्ट है। किन्तु ऑल इंडिया रेडियो ने आजादी के पूर्व इस दिशा में असावधानी और अपवाद के उदाहरण भी प्रस्तुत किये थे। शिष्टाचार

और सहानुभूति के भाव रसमाना तुकमाना आदि वैयक्तिक गुणों के प्रदर्शन से अपने सुनने वालों को आघात न पहुंचाने में ही लेखक की सफलता है।

व्यापक अपील

लाखों लोग आपकी रचना सुनते हैं। उस रचना में श्रोताओं को आनन्द प्राप्त होना चाहिए। अतः लेखक अपनी रचना का विषय ऐसा चुनता है जो अधिक से अधिक सुनने वालों की रुचि के अनुकूल हो। रचना का विषय सर्व-प्रिय और सर्व-ग्राह्य हो। प्रसारित कार्यक्रम श्रोताओं को आवश्यक रूप से आकर्षित करें और उनकी रुचि को बनाए रखें इसके लिए हमें यह जानना होता है कि श्रोता क्या पसन्द करते हैं और वे क्या सुनने की इच्छा रखते हैं।

श्रोताओं के लिए विषय का रुचिकर होना ही पर्याप्त नहीं है। अपनी रचना से लेखक जनता की रुचि को ऊपर उठाने और उसे उदात्त बनाने का भी यत्न करता है। कार्यक्रमों में जहां तक हो कुछ शैक्षणिक महत्व भी अवश्य होना चाहिए।

एक ही रचना में बच्चों महिलाओं प्रौढ़ों किसानों आदि को आकर्षित तथा आनन्दित करना संभव नहीं है। [illegible] " फलतः सामान्य श्रोताओं के कार्यक्रमों के अतिरिक्त रेडियो स्टेशन बालकों किसानों और अन्यान्य वर्गों के लिए विशेष कार्यक्रम प्रसारित करते हैं।

विशेष कार्य-क्रम

लेखक अपनी योग्यता रुचि और कार्यक्रम की सम्भावनाओं के अनुकूल किसी विशेष वर्ग के श्रोताओं के लिए प्रसारित प्रोग्राम का सूक्ष्म अध्ययन कर सकता है। उस कार्यक्रम के लिए कैसी रचना की आवश्यकता है और उसका निर्माण कैसे किया जाता है इन बातों पर अध्ययन ___

विचार किया जायगा किन्तु यहां सभी प्रकार के रेडियो कार्यक्रमों के विषय में एक सामान्य बात जान लेना उचित होगा। लेखक अपनी रचना के संभावित श्रोताओं का मन में ध्यान कर सकता है उनकी आयु, लिंग, बुद्धि रुचि अरुचि ज्ञान आदि का विचार कर वह स्वयं से यह प्रश्न पूछ सकता है क्या मेरी रचना इन श्रोताओं को आकर्षित कर सकेगी? क्या वह उन्हें हंसाने रुलाने अथवा आनन्दित करने में समर्थ होगी? यदि इन प्रश्नों का उत्तर 'हां' है तो लेखक की रचना में श्रोताओं के लिए व्यापक अपील है और वह अपने विषय के उचित निर्वाचन में सफल हुआ। जो लेखक अपनी रचना से संबन्धित श्रोताओं की रुचि-अरुचि को जितना अधिक जानने का प्रयत्न करेगा वह उतना ही अधिक सफल रेडियो लेखक बन सकेगा। कारण यह है कि रेडियो-लेखक स्वयं के मनोरंजन के लिए नहीं अपितु श्रोताओं के आनन्द के लिए उस रचना का निर्माण करता है।

उत्तम रचना

भारत में रेडियो विभाग सरकारी संस्थान है। यहां का कार्यक्रम इस देश की सांस्कृतिक चेतना का प्रतिनिधित्व करता है। वह इस देश के बौद्धिक जीवन की संस्मृति है। इसलिए यहां पर उत्तम और उच्च कोटि की रचना की मांग की जाती है। अतएव रचना को भाव और भाषा के दोषों से मुक्त रखने के लिए चतुर लेखक सावधानी और परिश्रम से कार्य करता है। उसे एक एक पंक्ति और यहां तक कि रचना के एक-एक शब्द की आवश्यकता और उपयोगिता की दृष्टि से जांच करनी चाहिये। इस काम में असावधानी करने पर प्रायः नवीन लेखकों के प्रारम्भिक प्रयासों का फल सन्तोषप्रद नहीं होता। उनकी रचनाएं लौटा दी जाती हैं। किन्तु इससे हतोत्साह होना भी ठीक नहीं है। आज की असफलता कल सफलता का सन्देश दे सकती है। यदि लगन उत्साह, परिश्रम और धैर्य से कार्य किया जाय तो आपकी सफलता निश्चित ही जानिये।

अपनी रचना को सुन्दर और उत्तम रूप प्रदान करने के लिए विषय पर प्रचुर सामग्री एकत्र कर उस पर परिपूर्ण विचार करना आवश्यक है। लिख लेने के पश्चात अपनी कृति में निःसंकोच काट-छांट और सुधार उस समय तक करते रहना लाभदायक है जब तक लेखक को यह संतोष न हो जाय कि अब इस रचना में सुधारों की गुंजाइश नहीं है। रचना में सुधार करने के लिए दो सुधारों के बीच एक-आध सप्ताह का समय रख कर उसे फिर से लिखना उचित है। अपनी रचना पर निष्पक्ष आलोचक की भांति विचार करना सदैव लाभदायक होता है।

मौलिकता

मौलिक रचना उत्तम रचना होती है। लेखक के लिए अपनी रचना में ऐसी बातों का समावेश करना आवश्यक है जो सुनने वालों ने कभी ध्यान में भी न लाई हों। किन्तु साथ ही वे अस्वाभाविक भी प्रतीत न होनी चाहियें। यही नहीं वह सर्व-विदित बात को मौलिक और अभिनव ढंग से प्रकट कर सकता है। नकल करने से बचना लेखक के हित में है। "श्री अमुक दिन आप के यहां से इस प्रकार की रचना प्रसारित हुयी थी व वैसी ही रचना भेज रहा हूं"-इस दृष्टिकोण से सदैव दूर रहना आवश्यक है। मौलिक रचना का रेडियो पर विशेष स्वागत किया जाता है। अपनी रचना को भाव अथवा भाषा में नयेपन का परिचय देना रेडियो-जगत में अपना स्थान बनाना है।

प्रोग्राम-पत्र का विश्लेषण

रेडियो विभाग श्रोताओं की अधिक जानकारी के लिए प्रोग्राम पत्र भी प्रकाशित करते हैं। इस समय आल इंडिया रेडियो के विभिन्न स्टेशनों के कार्यक्रमों के [illegible] पत्र प्रकाशित किये जा रहे हैं हिन्दी में "आरंभ" अंग्रेजी में "लिसनर" उर्दू में "आवाज़" बंगाली में "बेतार जगत" गुजराती में "नभोवाणी" और तामिल में "वानोली"।

किसी भी भाषा के प्रोग्राम पत्र में प्रकाशित कार्यक्रमों को ध्यान से देखकर लेखक इस बात का पता लगा सकता है कि कौन से स्टेशन से स्वास्थ्य-वार्ता खेल-कूद साहित्य-चर्चा नागरिक शिक्षा ज्ञान-विज्ञान आदि विषयों पर भाषण प्रसारित होते हैं तथा अन्य प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है। फिर लेखक उन भाषणों अथवा कार्यक्रमों से यह जान सकता है कि किन किन विशिष्ट विषयों पर रचनाएं स्वीकृत की जाती हैं। उन रचनाओं का प्रसारण कितने समय का होता है यह बात भी वह प्रोग्राम-पत्र से जान लेता है। इसी प्रकार रूपक का भी अध्ययन कर सकते हैं।

ध्यान से सुनो और खूब सुनो

रेडियो से प्रसारित रचना को बड़े ध्यान से सुनना चाहिये। इससे रेडियो-लेखक रचना के रूप और उसमें प्रकट किये गये भावों तथा विचारों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और रचना को सफल बनाने वाले गुणों का पता लगा सकता है। यह जान सकता है कि तर्क तथ्य उदाहरण और कल्पना के उपयोग से कोई रचना किस प्रकार रमणीय और आकर्षक बन गयी है। रेडियो से सफलतापूर्वक प्रसारित होनेवाली रचना की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए उसे ध्यानसे सुनना चाहिये और खूब सुनना चाहिये। ऐसा करने पर लेखक में रेडियो की आवश्यकताओं में अन्तर्दृष्टि का विकास हो जायगा।

अनेक मास पूर्व

रचना के विषय के चुनाव के लिए अनेक सांस्कृतिक पर्वों सामाजिक त्योहारों अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं और साहित्यकारों की जयन्तियों और पुण्यात्माओं की तिथियों आदि का एक लिखित विवरण भी अपने पास रख सकता है। किन्तु ऐसा न हो कि उस पर्व की तिथि के पूर्व

माह पूर्व ही कोई रचना भेजी जाय। रेडियो स्टेशनों के संचालक कार्यक्रमों का संयोजन करते हैं और ये कार्यक्रम अपनी निर्धारित तिथि के काफ़ी दिन पहले ही निश्चित कर लिये जाते हैं और प्रोग्राम-पत्रों में प्रकाशित भी कर दिये जाते हैं। ऑल इंडिया रेडियो के सभी स्टेशनों के कार्यक्रम साधारणतया तीन-चार महीने पहले ही बन कर तैयार हो जाते हैं। अतएव लेखक को संबंधित तिथि के चार मास पूर्व ही अपनी रचना भेज देनी चाहिये।

संक्षिप्त रचना

यदि प्रोग्राम-पत्र में किसी प्रकार की रचना के प्रसारित होने के समय का विवरण नहीं हो तो संक्षिप्त रचना ही भेजना उचित है। रेडियो कार्यक्रम में यह भी देखा गया है कि अमुक कविता कितने मिनट की है और उसके पाठ का कितना समय दिया गया है। संक्षिप्त रचना शीघ्र स्वीकृत हो जाती है। रेडियो-स्टेशन के कार्यक्रमों में समय की कमी रहती है। छोटी रचना को कार्यक्रम में स्थान देना सरल होता है। एक विचार प्रस्तुत करने में पूरा न पूरा नहीं रह कर थोड़े में अपने विचार प्रकट करने की क्षमता का अभ्यास चाहिए। यह एक बात सत्य है कि जितने रचना का समय निश्चित रहता है उतनी रचना के बराबर का उतने ही मिनट की रचना वांछनीय है।

उपर्युक्त नियमों के साथ रेडियो की कुछ और आवश्यकताएँ हैं। रेडियो के लिए अनेक विषय वर्जित माने गए हैं। साधारणतया भड़काने वाले और उत्तेजनापूर्ण विषयों का रेडियो पर और कोई स्थान नहीं है। सभी जातियों की भावनाओं से धर्मावलंबियों का समान ध्यान विचार रखा है न चरित्र-निर्माण और न मनोरंजन ही।

एक बात और है। कुछ ऐसे कार्यक्रम भी होते हैं जिन्हें रेडियो विभाग में ही तैयार कर लिया जाता है। इन विषयों पर रेडियो स्टेशन

को अपनी रचना भेजने के पहिले इस बात का पता लगा लेना उचित होगा कि अमुक प्रकार की रचनाएं विभाग के बाहर के कलाकारों से स्वीकार की जा सकती हैं अथवा नहीं । विभागीय लेखकों के कार्यक्रम में स्वतन्त्र लेखकों का हस्तक्षेप न करना ही बुद्धिमानी है । स्वतन्त्र लेखक अपने ही क्षेत्र पर ध्यान देकर अपूर्व सफलता के भागी बन सकते हैं ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि रेडियो-लेखक रचना के विषय को चुनने में अनेक साधनों का उपयोग करता है । कार्यक्रम का अध्ययन सामाजिक प्रतिबन्ध व्यापक अपील सरकारी निषेध और रेडियो स्टेशन की परम्पराएं विषय निर्वाचन में सहायक होती हैं ।

लिखते समय

आप कहेंगे "हमने रेडियो की आवश्यकताओं और नियमों के अनुकूल विषय चुन लिया है, उस पर सामग्री भी तैयार है, अब क्या किया जाय ? क्या इसे निबन्ध अथवा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं के समान लिख डाला जाय ?" आपके इन प्रश्नों का उत्तर एक वाक्य में देना कठिन है। इसके कारण हैं। रेडियो के लिए लिखने का एक विशेष ढंग है, एक विशेष भाषा-शैली है, उसका अपना एक विशिष्ट तन्त्र अथवा टेक्नीक है। सामान्य रूप से रेडियो के लिए लिखी जानेवाली रचना का ढांचा कुछ ऐसा होता है जो आरम्भ से ही श्रोताओं का ध्यान आकर्षित कर सके और उसे स्थिर रखने में समर्थ हो।

रेडियो की अपनी सीमाएं और क्षमताएं हैं। इनका प्रभाव रेडियो से प्रसारित रचना के भावों को व्यक्त करने की शैली पर पड़ता है।

केवल कान ही

आप पुस्तक के इस परिच्छेद को पढ़ रहे हैं। यह ज्ञान आपको आंखों के माध्यम से प्राप्त हो रहा है। किन्तु इच्छा अथवा आवश्यकता होने पर आप दूसरों से भी इसे सुनकर अपने ज्ञान-भंडार को पूरा कर सकते हैं। इसमें आप अपने कानों का आश्रय लेते हैं। इस प्रकार लिखित साहित्य के पठन-पाठन में मुख्यतः आंख और कभी-कभी आंख और कान दोनों का उपयोग किया जा सकता है किन्तु इसके विपरीत रेडियो से प्रसारित रचना का आनन्द आप उसे केवल कान ही के द्वारा सुनकर ले सकते हैं। रेडियो से प्राप्त ज्ञान श्रव्य-ज्ञान है। श्रवण शक्ति के अभाव में रेडियो से प्रसारित वार्ताओं, कविता और नाटक संगीत का आनन्द प्राप्त करना असम्भव ही है।

रेडियो श्रोताओं की तुलना कक्षा के विद्यार्थियों और रेडियो वक्ता की समानता कक्षा के अध्यापक से नहीं की जा सकती है। कक्षा में अध्यापक और विद्यार्थी एक दूसरे के सामने होते हैं। वहाँ पर वक्ता विद्यार्थियों को कोई बात समझाने में हाथ आदि के संकेतों द्वारा भावों को आकर्षक रमणीय और प्रभावोत्पादक ढंग से व्यक्त करने में अधिक सफल होता है। इसलिए श्रोताओं की रुचि भी पाठ की ओर लगी रहती है। वक्ता के हाव-भाव उनके ध्यान को पाठ की ओर आकर्षित करने म सहायक होते हैं। किन्तु रेडियो वक्ता और श्रोताओं को ये सुविधाएं प्राप्त नहीं हैं। रेडियो के वक्ता और श्रोता एक दूसरे को देखने में असमर्थ हैं। कार्यक्रम को सुनने में रेडियो-वक्ता को अपनी वाणी और रेडियो-श्रोताओं को अपने कानों का ही सहयोग और सहारा लेना होता है। कह सकते हैं कि रेडियो के श्रोतागण अंधे हैं, अदृश्य हैं और मूक व्यक्तियों के समान हैं। रेडियो से प्रसारित रचना के प्रत्येक भाव विचार, दृश्य घटना और कार्य का ज्ञान सुननेवालों को कानों के द्वारा ही प्राप्त होता है। इसे यों भी कह सकते हैं कि रेडियो से प्रसारित होनेवाले नाटक के पात्रों के हाव-भाव वेश-भूषा दृश्य-स्थिति पर्दा-प्रकाश-योजना तथा अनुभावों आदि की जानकारी भी श्रोताओं को कानों के द्वारा ही करायी जाती है। एतदर्थ रेडियो साहित्य श्रव्य-साहित्य है श्रोता जाने वाला साहित्य है ऐसी रचना है जिसका आनन्द और अध्ययन सुनकर-सुनाकर ही लिया जा सकता है।

केवल कान ही का उपयोग हो की आवश्यकता ने रेडियो के साहित्य की भाषा उसके शब्द-चयन वाक्य-विन्यास अनुच्छेद-आकार और रचना-कलेवर पर बड़ा प्रभाव डाला है। रेडियो के लिए लिखी गयी रचना में एक विशेष प्रकार की भाषा-शैली अपेक्षित हो गयी है। इस भाषा को हम श्रव्य-भाषा कह सकते हैं।

श्रव्य भाषा की विशेषताएं

कान से सुने जाने वाले साहित्य और आँख से पढ़े जानेवाले साहित्य की भाषाओं में कोई मूल भेद नहीं है। फिर भी श्रव्य भाषा के कुछ अपने गुण हैं। रेडियो के लिए लिखी जानेवाली रचना में इन गुणों का समावेश करना लेखक की सफलता में सहायक होता है। रेडियो रचना की भाषा ऐसी हो जो सरलता और स्वाभाविकता से बोली जा सके। वह बोली जा सकनेवाली भाषा हो किन्तु इसका अभिप्राय कदापि यह नहीं कि वह बोल-चाल की भाषा का ही प्रतिरूप मात्र हो। बोलचाल की भाषा और बोली जा सकनेवाली रेडियो-साहित्य की भाषा में अन्तर है। बोलचाल की भाषा दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली भाषा है तो रेडियो के साहित्य की भाषा [illegible] की भाषा है। एक साधारण भाषा है तो दूसरी साहित्यिक।

रेडियो के लिए लिखी हुई रचना की भाषा भावपूर्ण, रसपूर्ण और प्रवाहपूर्ण होते हुए भी ऐसी न हो कि उसके बोलने में कठिनाई का अनुभव करना पड़े। इस दृष्टि से लेखक अपनी रचना की भाषा की परीक्षा कर सकता है। वह अपनी रचना को स्वाभाविक तथा सामान्य वाणी में बोलकर पढ़ने से यह प्रश्न पूछ सकता है "क्या मैं ऐसे ही स्वर में बोलता हूँ?" इस प्रकार के प्रश्न से लेखक इस बात का निर्णय और निश्चय कर सकता है कि रचना बोली जा सकनेवाली श्रव्य भाषा में लिखी गयी है या नहीं।

रेडियो के लिए लिखी गयी रचना की भाषा का [illegible] में सुगम होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। श्रोता के लिए [illegible] अरुचिकर होता है। "[illegible]" की शैली कान से सुनी जाने वाली रचना के लिए हानिकारक है। जब श्रोताओं को अनेक बार सुनने पर भी अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता तो रचना

से उनका ध्यान टूट जाता है । वे उस रचना को न सुनकर अन्य रेडियो केन्द्र की ओर रेडियो-यंत्र की सुई घुमा देते हैं । इसके विपरीत जब लेखक कम से कम शब्दों में अपनी बात को कह देता है तो श्रोताओं को अर्थ समझ में आ जाता है और वे रचना के आगे के भाग को सुनने के लिए तत्पर हो जाते हैं ।

सुननेवालों के ध्यान को रचना की ओर आकर्षित रखने के लिए लेखक को भाषा को अतिशय सजावट और अलंकारों के प्रचुर प्रयोग से मुक्त रखना होता है । ज्यों ही आपने एक जटिल अलंकार का रूप खड़ा किया दो वस्तुओं में व्यापक और सूक्ष्म सादृश्य की स्थापना की कि श्रोताओं का ध्यान टूटा । ऐसा होने पर प्राय: श्रोतागण आपकी रचना सुनना बन्द कर देते हैं ।

शब्द-चयन में सावधानी

रेडियो रचना की भाषा चित्ताकर्षक होनी चाहिये । यद्यपि भाषा का चरम अवयव वाक्य है तथापि वाक्य में प्रयुक्त शब्द और वाक्यांश अपनी अपनी विशेषताओं के कारण श्रोताओं का ध्यान रचना की ओर आकर्षित कर सकते हैं । सरल और श्रुति-मधुर शब्दों का सफल प्रयोग रचना को सौंदर्य-दीप्त बना देता है । चतुर लेखक अप्रचलित मृत और अप्रयुक्त शब्दों का प्रयोग नहीं करता । कोमल किन्तु क्लिष्ट अर्थवाले शब्दों को भी रेडियो के लिए लिखी जानेवाली रचना में कोई स्थान नहीं है । रचना को सुनते समय श्रोताओं के लिए क्लिष्ट शब्दों के अर्थ जानने के लिए शब्द-कोष का उपयोग करना असम्भव है । और रचना की ओर ध्यान आकर्षित रखने के लिए शब्द का अर्थ स्पष्ट होना आवश्यक है । फलत: शास्त्रीय और संयुक्त शब्दों के स्थान पर साधारणतया सुगम और सरल शब्दों का प्रयोग कर श्रोताओं के ध्यान को स्थिर रखा जा सकता है ।

बहुत से शब्द रेडियो के लिए लिखी जानेवाली रचना में प्रयुक्त नहीं किए जाते । इन शब्दों का उच्चारण कठिन होता है । उनका उच्चारण रेडियो पर कर्णकटु भी लगता है । अतएव लेखक उन शब्दों और मुहावरों का प्रयोग कर सकता है, जो उसे अत्यन्त प्रिय लगते हैं अर्थात् वे शब्द जो लेखक की भावनाओं में सरलता से उतरते हैं । रचना का वह स्वयं बोलकर इस बात का पता लगा सकता है कि उसकी रचना का कौनसा शब्द बोलने और सुनने में कैसा लगेगा । इस प्रकार शब्दों की परीक्षा के पश्चात् ही लेखक उच्चारण के उपयुक्त शब्दों का चयन और रेडियो-बाह्य (non radio) शब्दों का बहिष्कार कर सकेगा । धीरे-धीरे वह शब्द को कागज में ही देखकर उसके उच्चारण और श्रवण-उपयोगिता या अनुपयोगिता का पता लगाने की क्षमता प्राप्त कर सकता है । कुशल लेखक तो अचेतन रूप से इस निष्कर्ष पर शीघ्र ही पहुंच जाते हैं ।

प्रत्येक रचना में संज्ञा यदि किसी चित्र को प्रस्तुत करती हो तो ऐसी संज्ञा का प्रयोग अवश्य किया जाय । लेखक प्रश्न कर सकता है "क्या यह संज्ञा किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा वस्तु-स्थिति का चित्र प्रकट करती है ?" जैसे "तारा" शब्द चांदनी रात का द्योतक है तो "अमा" शब्द अंधेरी रात का । प्रत्येक शब्द चाहे वह संज्ञा हो अथवा क्रिया विशेषण हो अथवा क्रिया विशेषण किसी विशेष अर्थ का द्योतक हो, तभी उसका प्रयोग सार्थक है । रचना में प्रयुक्त हर शब्द का अपना महत्त्व होना चाहिये । दूसरे शब्दों में इसे यों कहिए कि भर्ती के शब्दों का बहिष्कार करना नितान्त आवश्यक है ।

नवीन लेखक खास शब्दों के प्रयोग में बड़ी सावधानी से काम कर सकते हैं । व्यवसायी लेखकों और पत्रकारों के समान वे प्राय: बने-बनाये शब्दों का प्रयोग नहीं करते; वे उपयुक्त शब्द की खोज कर सकते हैं । उनके लिए आवश्यकता केवल इसी बात की है और वह यह कि अपने

शब्द-भंडार में वृद्धि करना और रेडियो को ध्यान से सुनकर रेडियो के अनुकूल शब्दों का संग्रह करना ।

सबल वाक्य-विन्यास

ऐसी साधारण पंक्तियाँ जिनमें ध्यान आकर्षित करने की क्षमता का पूर्ण अभाव हो अनेक रेडियो-लेखकों की असफलता का कारण बनी है । निस्संदेह रमणीय और प्रभावोत्पादक वाक्य ही रेडियो के लिए लिखी जानेवाली रचना का मेरुदंड है । सफल रेडियो-लेखक बनने वालों को अपनी रचना की प्रत्येक पंक्ति में सुधार और परिष्कार कर उसे सबल और सरस प्रभावपूर्ण और प्रांजल बनाना होता है । लेखक की चेष्टा हो कि वह अपनी रचना में एक भी ऐसे वाक्य को स्थान न दे जो चित्ताकर्षक श्रुति-मधुर और साथ ही प्रयोजनपूर्ण न हो ।

वाक्य भाषा की इकाई है और रेडियो के लिए लिखी जानेवाली रचना में एक सबल और सरस वाक्य का बड़ा महत्व है । प्रसारित होने वाली रचना में एक वक्ता श्रोताओं को कुछ बातें सुनाता है । रेडियो कार्यक्रम सुनते समय श्रोताओं के लिए यह सम्भव नहीं है कि किसी वाक्य का अर्थ समझ में न आने पर वे उस वाक्य को पुन सुन सकें । एक ही वाक्य को दूसरी बार तभी सुना जा सकता है जब उस रचना के तैयार किये हुये रेकार्ड को पुन सुनाने की व्यवस्था की जाय । एतदर्थ साधारणतया रचना के किसी वाक्य को श्रोता एक ही बार सुन सकते हैं । सुननेवालों की यह कठिनाई और रेडियो की यह सीमा उसके लिए लिखी जानेवाली रचना के वाक्य-विन्यास पर बड़ा प्रभाव डालती है ।

सरल और संक्षिप्त वाक्यों का अर्थ श्रोताओं का आसानी से समझ में आ जाता है । उनके अर्थ को समझने में अधिक प्रयत्न की आवश्यकता नहीं

होगी। दूसरी ओर दीर्घ मिश्रित और संयुक्त वाक्यों में अनेक छोटे-छोटे विचार रहते हैं जिनके अर्थ को समझने में श्रोताओं को कठिनाई हो सकती है। इनके अर्थ को समझने में उन्हें अधिक प्रयत्न करना पड़ता है। और फिर तुरन्त अर्थ-बोध न होने पर श्रोताओं का ध्यान और धैर्य टूट जाता है। इसलिए जिन वाक्यों में कम से कम विराम अर्द्ध विराम का प्रयोग हो उनका उपयोग किया जाय। छोटे २ सरल वाक्यों का प्रयोग हो। इनसे वाक्यों को सुनने से श्रोताओं का रचना की ओर ध्यान-धैर्य बना रहता है। अर्थ सरलता से समझ में आ जाने पर रचना को सुनने में उनका उत्साह और आत्म-विश्वास भी बढ़ जाता है।

छोटे सरल वाक्यों के प्रयोग के साथ लेखक यदा कदा संयुक्त मिश्रित संतुलित और अन्य प्रकार के वाक्यों का भी उपयोग कर सकता है। वस्तुतः रचना का प्रत्येक वाक्य प्रभावपूर्ण चित्ताकर्षक स्पष्ट और श्रुति-मधुर होना आवश्यक ही नहीं अपितु अनिवार्य है।

अनुच्छेद-आकार

प्रत्येक रचना में अनेक अनुच्छेद (पैराग्राफ) होते हैं। प्रत्येक अनुच्छेद में लेखक एक विचार को प्रकट करता है और एक अथवा अनेक वाक्यों में उस विचार की व्याख्या और विस्तार किया जाता है। रेडियो के लिए लिखी जाने वाली रचना में छोटे छोटे अनुच्छेद ही होते हैं। ऐसा नहीं हो कि एक ही विचार की व्याख्या करने में अनेक पृष्ठों का एक ही अनुच्छेद बना दिया जाय। कभी कभी रेडियो-साहित्य की इस आवश्यकता के कारण यह कह दिया जाता है कि रेडियो गम्भीर विचार-व्याख्या के लिए उपयुक्त माध्यम नहीं है।

रचना-कलेवर

रेडियो के लिए [illegible] अधिक समय की रचनाओं का उपयोग किया जाता है। एक बड़ी रचना को केवल नाम ही से लम्बे

समय तक सुनते रहना असम्भव है। रेडियो से आप पूरे चार घंटे में समाप्त होने वाले उपन्यास को नहीं सुन सकेंगे। कुछ ही समय के बाद आप उकता जायेंगे। अनुभव और काल की उक्त सीमा के प्रकाश में नाटक कहानी भाषण और कविता आदि के लिए एक निश्चित समय की परिपाटी सी चल पड़ी है। प्रत्येक रचना के सामान्य समय के विषय में आगे के परिच्छेदों में यथास्थान पर विचार किया जायगा।

शैली के गुण

लेखक की शैली-विचारों और भावों को प्रकट करने के-ढंग में कुछ और गुणों का होना आवश्यक है। उसकी भाषा-शैली में सरलता, स्पष्टता, स्वच्छता और शिष्टता भी हो। शैली में लेखक के व्यक्तित्व की झलक होनी भी आवश्यक है। शैली ही मनुष्य है। लेखक का ज्ञान, साहसिकता सहृदयता जीवन के आदर्श, विनोद आदि की छाया उसकी भाषा-शैली पर पड़ती है। ऐसा होने पर उसकी शैली में मौलिकता का समावेश हो सकेगा और मौलिक शैली रेडियो लेखक के लिए अत्यावश्यक है इसी में उसकी सफलता है।

रेडियो के लिए लिखना मूक और अदृश्य श्रोताओं के लिए लिखना है। लेखक को सभी बातों का प्रकटीकरण वाणी के द्वारा करना पड़ता है और श्रोता उसे सुनने में केवल कानों का ही उपयोग कर सकते हैं। ये सीमाएं सरल और श्रुति-मधुर शब्द तथा सरल और सबल वाक्य की अपेक्षा करती हैं। रेडियो-लेखन की अपनी विशेष भाषा-शैली है।

रचना को कैसे भेजें

उपर्युक्त सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर लेखक अपनी रचना को सर्वाङ्ग-सुन्दर रूप प्रदान कर देता है। उसने रचना लिख डाली, उसमें सुधार और परिष्कार भी कर लिया। तब फिर उसे रेडियो

स्टाम्प को भेजने का प्रश्न आता है । रचना का टिकिट-स्टाम्प भेजना भी एक कला है ।

सबसे प्रथम लेखक के लिए अपनी रचना को एक नवीन, आकर्षक और रुचिकर शीर्षक प्रदान करना होता है । यदि सम्भव हो तो रचना टाइप करवा कर या सुन्दर स्याही की लिखावट में भेजना उचित है । इसके साथ ही रचना के साथ पीछे एक एक मोटा सुन्दर कागज लगा देना भी बुद्धिमत्ता का काम होगा । ऊपर के कागज पर लेखक रचना का शीर्षक लिख कर अपना नाम और रचना में प्रयुक्त शब्दों की संख्या और प्रसारण में लगने वाले समय का जिक्र करता है ।

रचना के साथ में कोई लम्बा-चौड़ा पत्र भेजना आवश्यक नहीं । आपकी रचना ही आपका पत्र है और परिचय भी । हां कभी २ संक्षिप्त पत्र भेज कर रचना की मौलिकता की ओर संकेत किया जा सकता है । रचना भेजने में इन सभी बातों का ध्यान रख कर लेखक रचना की स्वीकृति के लिए साधारण पृष्ठभूमि तैयार कर लेता है ।

द्वितीय खण्ड

रेडियो साहित्य के विभिन्न स्वरूप

रेडियो कहानी कैसे लिखनी चाहिये

मनुष्य को कहानी स्वभाव से ही प्रिय है। साक्षर और निरक्षर दोनों ही वर्गों के लोग युगों से कहानियाँ सुनते और सुनाते आये हैं। कहानी में सभी वय के लोगों को आनन्द प्राप्त होता है। तभी तो "माँ कह एक कहानी" की बाल मनुहार से लेकर एच. जी. वेल्स की वैज्ञानिक कहानियों तक एक क्रम सा बन गया है। कहानी शिक्षा और मनोरंजन दोनों उद्देश्यों को पूरा करती है। इसलिए कहानी का मानव-जीवन में बड़ा महत्व है।

रेडियो जगत में

रेडियो के कार्यक्रम में भी कहानी को विशेष स्थान प्राप्त है। प्रायः सभी रेडियो-स्टेशन अपने साधारण कार्यक्रमों में कहानियाँ प्रसारित करते हैं। बच्चों का कार्यक्रम, महिला-समाज, देहाती प्रोग्राम, विद्यार्थी-जगत आदि सबके प्रोग्रामों में तो कहानियाँ विशेष रूप से सुनाई जाती हैं। इनके नैतिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव के कारण आजकल कहानी-साहित्य की माँग बढ़ गई है। गीतों-भरी कहानी रेडियो कार्यक्रम की अपनी विशेषता है। अतएव गीतों-भरी कहानी और नाट्य-कहानी के द्वारा या प्रचार प्रसिद्धि प्राप्त कर सकता है।

साधारण और रेडियो कहानी

कहानी की कोई सर्व-सम्मत परिभाषा नहीं दी जा सकती है। उसके साधारण रूप का ज्ञान अवश्य प्राप्त किया जा सकता है। लेखक सत्य और कल्पना का सहारा लेकर किसी उद्देश्य अथवा प्रभाव की सृष्टि करने के लिए जीवन के किसी पक्ष को प्रस्तुत करता है तो उसे कहानी की संज्ञा दी जाती है। उपन्यास के समान कहानी में जीवन का विस्तृत विवरण और चित्रण नहीं होता है।

कहानी की घटनाएं प्राय जीवन के एक पक्ष से सम्बन्धित होती है। वे एक ही लक्ष्य की ओर संकेत करती हैं। घटनाओं के ऐसे समूहों को हम कथानक कहते हैं। इन घटनाओं को संचालित करनेवाले व्यक्तियों को साहित्य-जगत में पात्र के नाम से पुकारा जाता है। घटनाओं का आरोह अवरोह में पात्रों के गुणों और दोषों स्वभाव और प्रकृति का जो चित्रण होता है वह चरित्र-चित्रण कहलाता है। पात्रों के गुणों और दोषों को प्रकट करने के लिए उनके मुख से जो बातें कहलाई जाती हैं उसे कथोपकथन कहते हैं। जिस स्थान और समय में ये घटनाएं सचालित होती हैं वह देश-काल कहलाता है। पात्रों के चारों ओर की स्थिति को वातावरण कहते हैं। अत कहानी "साहित्य का एक नवीन कलात्मक रूप है जिसमें लेखक अपनी कल्पना शक्ति के सहारे कम से कम पात्रों अथवा चरित्रों के द्वारा कम से कम घटनाओं और प्रसंगों की सहायता से मनोवांछित कथानक चरित्र चित्रण वातावरण, दृश्य अथवा प्रभाव की सृष्टि करता है।"

रेडियो कहानी उपर्युक्त तत्वों की दृष्टि से रेडियो कहानी और साधारण कहानी में कोई विशेष अन्तर नहीं है। किन्तु प्रत्येक पढ़ी जानी वाली कहानी प्रसारण के उपयुक्त ही हो यह भी आवश्यक नहीं। रेडियो कहानी की अपनी विशेषताएं हैं। उसकी अपनी सीमाएं और सफलताएं हैं। रेडियो कहानी में लेखक कथा-विस्तार की दृष्टि समय की पाबंदी में बंधा है तो साधारण कहानी में उसके लिये उस पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। रेडियो कहानी एक निश्चित समय में समाप्त होती है। प्राय पन्द्रह बीस मिनिट में रेडियो कहानी को समाप्त कर देना वांछनीय है। २० मिनिट से अधिक समय तक केवल कान के द्वारा श्रोताओं के ध्यान को रखना की और आकर्षित रखना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। अच्छा के लिए लिखी जानेवाली कहानी तो दस मिनिट या इससे भी कम समय की होती है।

रेडियो कहानी की एक विशेषता और है। रेडियो कहानी ऐसी हो जो बोल कर सुनाई जा सके। उसे सुनने में आनन्द प्राप्त हो। रेडियो

कहानी का प्रत्येक वाक्य प्रत्येक शब्द निश्चित विचारपूर्वक और सुगम व प्रभाव-दायक होना अनिवार्य है।

रेडियो कहानी और साधारण कहानी की ऊपर वर्णित भिन्नता का प्रभाव कहानी के कथानक, पात्र, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन आदि तत्वों पर भी पड़ता है। यह बात रेडियो कहानी लिखते समय और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है।

कहानी का निर्माण

'रेडियो कहानी कैसे लिखनी चाहिए?' यह कोई कठिन प्रश्न नहीं है। एक चतुर व्यक्ति बड़ी सरलता और भावनाओं से एक सुन्दर कहानी लिख सकता है। सर्व प्रथम लेखक को अपनी कहानी के निर्माण के लिए उसके चरमोत्कर्ष-क्लाइमैक्स-अथवा तीव्र बल को प्राप्त करना होता है। चरमोत्कर्ष कहानी वह स्थल है जहां मनुष्य के भावों का उभार अधिकतम उत्पन्न होता है। चरमोत्कर्ष कहानी की वह परिस्थिति है जिसमें भावों के तीव्रतम विस्फोट की सम्भावना हो। उदाहरणार्थ एक निराश प्रेमी अपनी प्रेमिका के पति का प्राण रेल से बचाने के लिए स्वयं निरपराध होते हुए भी फांसी के फन्दे में झूलने को तैयार हो जाता है। मानव जीवन की यह एक तीव्रतम स्थिति है। यही चरमोत्कर्ष है। यही कहानी का सार तत्व है। जीवन की तीव्रतम स्थिति का सम्बन्ध मनुष्य जीवन की गूढ़ और कठिन समस्याओं, संघर्षों और विचारों से हो तो कहानी और भी अधिक प्रभावपूर्ण हो जाती है।

कहानी का चरमोत्कर्ष प्राप्त करने के पश्चात् लेखक को उन घटनाओं का क्रम बनाना है जो कथा को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से चरमोत्कर्ष की ओर ले जाती हैं। इसके विपरीत यह नहीं हो कि कहानी को लिखना आरम्भ कर दिया जाय और फिर मध्य पर सोचना शुरू कि अब इस कहानी का अन्त कैसे किया जाय और कहां किया जाय। चरमोत्कर्ष को पहिले

निश्चय कर लेना आवश्यक है । उसे प्राप्त करने के पश्चात् तो लेखक का यही कर्तव्य है कि

'कहानी का आरम्भ तुरन्त होना चाहिए । आरम्भ होने के पश्चात कहानी सीधी आगे को अग्रसर होनी चाहिये और उसमें कोई भी ऐसी बात न हो जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से कहानी को उसके चरमोत्कर्ष की ओर न ले जाती हो । 'उद्देश्य के बिना इसका कोई प्रयोजन नहीं' कहानी-लेखक का आदर्श होना चाहिये । *

रेडियो कहानी में एक निश्चित समय में आ सकने वाली घटनाओं का ही समावेश किया जा सकता है । उसकी प्रत्येक घटना का गतिशील और प्रभावशील होना आवश्यक है । ये घटनाएं आपस में एक दूसरे से पूर्ण रूप से सम्बद्ध ही न हो अपितु उनका चरमोत्कर्ष की ओर तीव्रगति से अग्रसर होना भी आवश्यक है ।

कथानक की विशेषताएं

कहानी की इन सम्बद्ध घटनाओं को कथानक अथवा 'प्लाट' कहते हैं । लेखक घटनाओं का ऐसा क्रम तैयार करता है जो कहानी के चरमोत्कर्ष का स्वतः निर्माण कर देता है । जो व्यक्ति अपनी प्रेमिका के पति की प्राण-रक्षा के लिए स्वयं प्राण-विसर्जन करता है उसके जीवन के पीछे की घटनाएं लेखक बता सकता है । प्रेमिका उस आदमी से घृणा करती है वह कुरूप है उसे फटकारती है किन्तु वह चोरी-छुपके झाड़-झंखाड़ से प्रेमिका के पांव मात्र को देख कर अपने को धन्य समझता है फिर प्रेमिका के पति पर देष-द्रोह का आरोप लगता है । इन सभी बातों को लेखक क्रमबद्ध रूप से प्रकट कर सकता है और

* ह्यू नर्गलिस हाउ टु राइट एण्ड सेल ।

जिस समय सुहाग रात होती है उसी सन्ध्या को वह प्रेमी पत्नी को अपराधी सिद्ध कर फांसी की रस्सी में झूल जाता है । यह कितना तीव्र व्यंग है जब एक व्यक्ति के जीवन में आनन्द का आरम्भ। दीप–मालाएं जगमगा उठीं उसी समय किसी का जीवन-दीप ही बुझ गया । इसी प्रकार लेखक को यह ध्यान रखना होता है कि वह अपने कथानक में ऐसी घटनाओं और प्रसंगों का समावेश करे जो स्वाभाविक और निश्चित रूप से जीवन की उस तीव्र स्थिति को उत्पन्न करदें जिसे चरमोत्कर्ष के नाम से पुकारा जाता है । चरमोत्कर्ष—क्लाइमैक्स—को पहिले प्राप्त करके फिर उसके पूर्व इस प्रकार घटनाएं जोड़ना उचित है । कहानी लिखने के पूर्व घटनाओं और चरमोत्कर्ष का एक साधारण रूप लेखक के सामने होना आवश्यक है ।

कहानी के कथानक का विश्वसनीय होना वांछनीय है । उसका रूप ऐसा होना आवश्यक है जिसकी सत्यता पर पाठक संदेह अथवा आपत्ति न करें । जीवन की यथार्थ घटनाओं को कल्पना और सौन्दर्य के साथ प्रकट करना युक्ति-संगत है । मनुष्य के समस्त नियम आदर्श आप इच्छाओं आशाओं रुदन हास्य दुःख सुख घृणा आदि को उनके यथार्थ रूप में प्रकट करना कहानी को प्रभावशाली बनाना है । रेडियो कहानी के कथानक का तो और भी अधिक विश्वसनीय होना आवश्यक है । साधारण कहानी का पाठक काल्पनिक मानकर चल सकता है किन्तु रेडियो कहानी का श्रोता उसे प्राय एक सत्य घटना के रूप में स्वीकार करने को तत्पर रहता है ।

कहानी के कथानक—प्लाट—दो प्रकार के होते हैं घटना-प्रधान और चरित्र-प्रधान । एक में घटनाओं की प्रधानता होती है तो दूसरे में पात्रों के चरित्र-चित्रण पर जोर दिया जाता है । चरित्र-प्रधान कहानी का स्थान मान्य है । चरित्र-चित्रण के साथ इसका विचार किया जायगा रेडियो के लिए लिखी जानेवाली कहानी का तो घटना-प्रधान होना उचित

है । सापेक्षित रूप से कहानी में घटनाओं प्रसंगों और क्रियाओं को अधिक महत्व दिया जाय । लेखक पात्र अथवा पात्रों के गुणों और अवगुणों के वर्णन के द्वारा श्रोताओं के ध्यान को रखना की ओर आकर्षित रखने में असफल हो सकता है । किन्तु जब एक के बाद दूसरी घटना होती है तो श्रोतागण बड़ी उत्सुकता से यह सोचने लगते हैं कि घटनाओं के इस घात-प्रतिघात का क्या परिणाम होगा उनका क्रम कहां समाप्त होगा ?

पात्र

कथानक की घटनाओं को संचालित करने आगे बढ़ाने अथवा किसी परिणाम तक ले जाने के लिए पात्रों की आवश्यकता होती है । साधारण कहानी के लिए पात्रों की संख्या निश्चित नहीं है । रेडियो कहानी में दो-तीन प्रमुख पात्रों से अधिक पात्रों का प्रयोग न करना ही समीचीन होगा। कारण यह है कि केवल कान ही के द्वारा श्रोता के लिए दो-तीन से अधिक पात्रों के व्यक्तित्व और नामों को याद रखना कठिन हो जाता है ।

एक उत्तम कहानी में पात्र सर्वत्र गतिशील रहते हैं । रेडियो कहानी में ऐसा होना आवश्यक है । किसी परिस्थिति अथवा घटना के कारण पात्रों में कुछ प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है और वे कुछ कार्य करते दीख पड़ते हैं । स्वर्गीय मिर्जा अज़ीम बेग चुग़ताई की प्रसिद्ध कहानी 'कोलतार' में पात्र प्रत्येक स्थान पर गतिशील दिखाई देते हैं वे वार्तालाप में भी किसी कार्य की गति की ओर ही संकेत करते हैं । ऐसी कहानी रेडियो पर अधिक सफल होगी जिनमें पात्रों के जीवन में कुछ बातें घटित होती रहती हैं और पात्र क्रियाशील दिखाई देते हैं । निःसंदेह घटनाएं रेडियो कहानी का मेरुदंड हैं ।

कहानी के पात्र मानव प्रतीत हों । वे जीवित प्राणियों की छाया मात्र हों यह बात आवश्यक नहीं है । कल्पना के उपयोग से लेखक

पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को प्रकट करने के दो ढंग हैं—एक तो घटनाओं के द्वारा और दूसरा वर्णन के रूप में । घटनाओं के द्वारा पात्रों की विशेषताओं और विरूपताओं को व्यक्त किया जा सकता है । पात्रों के दैनिक जीवन के कार्यकलाप और सम्भाषणों में पात्रों के मानसी संस्कारों साहसिकता ईर्ष्या दया आदि को दर्शाया जा सकता है । ऐसा करने पर लेखक यह नहीं कहता कि अमुक पात्र वीर है अथवा दयावान है अपितु उसके जीवन के आचार—विचार में उसकी वीरता अथवा दया प्रकट होती दिखाई जाती है । वह वीरता का कार्य करता है अथवा दान देता दिखाया जाता है । मानव—जीवन से संबंधित ऐसी घटनाएं तो और भी अधिक मनमोहक एवं चित्ताकर्षक प्रतीत होती हैं । इस प्रकार घटनाएं पात्रों के चरित्र को व्यक्त करती हैं । पात्रों की परिस्थिति और उसमें होने वाली पात्रों की प्रतिक्रिया उसके वीरत्व पतन आदि को विलग्न अथवा विकृत रूप में प्रकट कर सकती है । लेखक मुख्य पात्र के जीवन के एक अथवा अनेक स्थलों पर उसकी विशिष्ट चारित्रिक विशेषताओं को प्रकट कर सकता है । घटनाओं और दैनिक जीवन के कामों में पात्र के गुणों और अवगुणों की अभिव्यक्ति करना स्वाभाविक ही है । प्रत्येक मनुष्य के गुण उसके कार्य-कलाप में अपने आपको प्रकट करते हैं ।

चरित्र—चित्रण का दूसरा साधन है, वर्णन । लेखक एक अथवा अनेक स्थानों पर पात्र की विशेषताओं अथवा विरूपताओं का वर्णन मात्र कर देता है। किन्तु चरित्र-चित्रण की वर्तमान पद्धति यह है कि पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं या विरूपताओं के वर्णन के स्थान पर उन्हें पात्रों के कथोपकथन और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के द्वारा प्रकट किया जाता है । लेखक पात्रों को अपनी बात कहने और कार्य करने का अवसर दे देता है । और पात्रों की "कथनी और करनी" में उनका चरित्र अभिव्यक्त हो जाता है ।

ऐसी कहानी में एक ही तीव्र घटना चरमोत्कर्ष (क्लाइमैक्स) में पात्र के चरित्र की महानता या हीनता की अभिव्यक्ति भी हो सके तो और भी अधिक उत्तम है। चरित्र की अन्य विशेषताओं को लेखक दूसरे स्थानों पर भी व्यक्त कर सकता है।

घटनाओं और क्रिया के द्वारा पात्र का चरित्र-चित्रण करने में एक और बात का ध्यान रखा जाता है। समस्त घटनाएं चरित्रों से प्रवाहित अथवा प्रभावित होनी चाहिये। पात्र उनके कर्त्ता या संचालक हैं। ये घटनाएं पात्रों के गुण द्वेष क्रोध प्रेम तथा ईर्ष्या आदि के कारण उत्पन्न होती हैं। इसलिए वे पात्रों के चरित्र के अनुकूल होनी चाहिये। प्रेमिका का भक्ति भाव से प्रेम करने वाला व्यक्ति ही उसके लिए प्राणों का बलिदान कर सकता है। उसके इस अनन्य प्रेम का परिचय इस बात से ही मिल जाता है कि वह चोरी चुपके अपनी प्रेमिका के पांव को झुरमुट की ओट से देख कर अपार सुख और संतोष का अनुभव करता है। इस प्रकार के कार्य अथवा घटना की स्वाभाविकता का पता लगाने के लिए लेखक अपने आप से यह प्रश्न पूछ सकता है "क्या यह पात्र कथा की परिस्थिति में वैसा ही कार्य अथवा व्यवहार करता है जैसा कि एक जीवित व्यक्ति वैसी ही परिस्थिति में करता?" यदि इसका उत्तर ठीक हो तो लेखक सफल हुआ। परिस्थिति के प्रति होनेवाली पात्रों की ऐसी प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप ही कहानी अपने चरमोत्कर्ष की ओर संतोषजनक ढंग से अग्रसर होती है।

व्यक्ति प्रधान चरित्र-चित्रण

पात्र का चरित्र-चित्रण व्यक्ति प्रधान होना उचित है। उसके गुण अवगुण और प्रवृत्ति को इस ढंग से प्रकट करना चाहिये कि वह अन्य लोगों से भिन्न प्रतीत हो। उसका अपना स्वयं का एक सुनिश्चित व्यक्तित्व हो। ऐसी कहानी में तो पात्रों का चरित्र व्यक्ति प्रधान होना और भी अधिक आवश्यक है।

श्रोतागण एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए कहानी सुनते हैं। उनकी सारी इच्छाएँ, कामनाएँ तथा प्रवृत्तियाँ उनके दैनिक जीवन में पूर्ण नहीं हो पाती हैं। अतः वे कहानी पढ़ने या कहानी सुनने में तो पात्र के व्यक्तित्व में अपने व्यक्तित्व की स्थापना कर देते हैं। उपचेतन रूप से वे अपने आप को नायक अथवा नायिका समझने लगते हैं। श्रोता और पात्र की इस एकरूपता के कारण नायक अथवा नायिका की इच्छाओं, वासनाओं तथा प्रवृत्तियों की सन्तुष्टि के साथ साथ श्रोताओं अथवा पाठकों की अतृप्त इच्छाओं, कामनाओं, वासनाओं तथा प्रवृत्तियों आदि की भी तृप्ति हो जाती है। सिनेमा अथवा चलचित्र में नायक और नायिका की सुखमय केलि-क्रीड़ा को देखकर युवक का मन भर उठता है और इस प्रकार उसकी काम-तृप्ति स्वतः हो जाती है। अतः लेखक अपने पात्र के चरित्र को ऐसा ही रूप देता है जिसे सुनकर श्रोताओं की अतृप्त इच्छाएँ, कामनाएँ, वासनाएँ तथा आकांक्षाएँ शान्त हो सकें। आदर्श पात्र अपने श्रोताओं की कामनाओं और आकांक्षाओं की तृप्ति में साधक बनें।

५-संवाद तथा कथोपकथन

पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए उनके बीच होने वाले संवाद अथवा कथोपकथन का भी उपयोग किया जा सकता है। कथोपकथन कहानी को स्वाभाविकता प्रदान करता है। साथ ही साथ कथोपकथन कहानी के कथा-विकास को आगे भी बढ़ाता है। इस कारण रेडियो के लिए लिखित कहानी में भी इसका बड़ा महत्व है। जब कथोपकथन का कहानी में उपयोग किया जाता है तब लेखक को सावधानी से काम करना होता है। ऐसा न हो कि कथोपकथन में पात्रों के चरित्र का अंकन न होकर लेखक के व्यक्तित्व, उसकी प्रकृति और गुणों की अभिव्यक्ति हो जाय। एतदर्थ पात्रों के संवाद में उनके ही गुणों और दोषों का अंकन करना आवश्यक है। कथोपकथन स्वाभाविक और बोलने वाले की मानसिक स्थिति कठोरता सहानुभूति आदि को व्यक्त करने वाला भी हो।

एक बात और आवश्यक है। कथोपकथन स्वाभाविक होना चाहिए। इसके लिए लेखक पात्रों की शिक्षा, संस्कृति आदि के अनुसार कथोपकथन की भाषा का प्रयोग करता है। शिक्षित पात्रों की भाषा का शब्द-चयन और वाक्य-विन्यास एक देहाती व्यक्ति की बातचीत के शब्द-चयन और वाक्य-विन्यास से भिन्न होता है।

पात्रों का संवाद स्वाभाविक होते हुए भी मनोरंजक होना आवश्यक है। किन्तु वह दैनिक जीवन का नकल मात्र न हो। लेखक कथोपकथन को बार-बार पढ़कर उसकी भाषा प्रवाहिकता, स्वाभाविकता और प्रभावोत्पादकता का पता लगा सकता है।

रेडियो से सुनाई जाने वाली कहानी का स्वाभाविक, विश्वसनीय और घटना-प्रधान होना आवश्यक है। कथोपकथन भी इन गुणों के विकास में सहायक हो सकता है। ऐसा करने में लेखक की कुशलता है।

देश-काल और वातावरण

कहानी की प्रत्येक घटना कोई विशेष समय, स्थान और स्थिति में होती है। जिस स्थान पर वह घटना होती है उसे 'देश' कहते हैं, उसके समय को "काल" का नाम दिया जाता है और घटना के चारों ओर जो अन्य व्यक्ति, वस्तु, प्रकृति होती है उसे "वातावरण" कहते हैं। रेडियो लेखक आवश्यक रूप से कहानी की घटनाओं के "कहाँ" और "कब" होने को पार भी स्पष्ट करता है। कहानी में देश, काल और वातावरण इन तीनों में समरसता होनी चाहिए। मनुष्य के मानसिक जीवन को उसकी परिस्थिति भी प्रभावित करती है। ऐसा न हो कि निर्धन बालक को पुष्पों और फलों से सुसज्जित वाटिका में लाकर खड़ा कर दिया जाय। शुष्क प्रकृति ही उसका उचित वातावरण हो सकता है। रेडियो कहानी में वातावरण का कम महत्त्व है। रेडियो कहानी के विस्तार-संकोच के कारण वातावरण का केवल संकेतात्मक रूप में ही दिया जा सकता है।

श्रोतागण एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए कहानी सुनते हैं। उनकी अनेक इच्छाएं कामनाएं तथा प्रवृत्तियां उनके दैनिक जीवन में पूर्ण नहीं हो पाती हैं। जब वे रेडियो-यंत्र से कहानी सुनते हैं तो पात्र के व्यक्तित्व में अपने व्यक्तित्व की स्थापना कर देते हैं। उपचेतन रूप से वे अपने आप को नायक अथवा नायिका समझने लगते हैं। श्रोता और पात्र की इस एकरूपता के कारण नायक अथवा नायिका की इच्छाओं वासनाओं तथा प्रवृत्तियो की संतुष्टि के साथ साथ श्रोताओं अथवा पाठकों की अतृप्त इच्छाओ कामनाओं वासनाओं तथा प्रवृत्तियों आदि की भी तृप्ति होजाती है। जिसप्रकार प्रेमी चलचित्र में नायक और नायिका की सुखमय केलि-क्रीड़ा को देखकर सुख का अनुभव करता है और इसप्रकार उसकी काम-वृत्ति शान्त होजाती है। अत लेखक अपने पात्र के चरित्र को ऐसा ही रूप देता है जिसे सुनकर श्रोताओं की अतृप्त इच्छाएं, कामनाएं, वासनाएं तथा आकांक्षाएं शान्त हो सकें। आपके पात्र आपके श्रोताओं की कामनाओं और आकांक्षाओं की तृप्ति के साधन बनें।

संवाद तथा कथोपकथन

पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए उनके बीच होने वाले संवाद अथवा कथोपकथन का भी उपयोग किया जा सकता है। कथोपकथन कहानी को स्वाभाविकता प्रदान करता है। साथ ही साथ कथोपकथन कहानी के कथा-विकास को आगे भी बढ़ाता है। इस कारण रेडियो के लिए लिखित कहानी में भी इसका बड़ा महत्त्व है। जब कथोपकथन का *कहानी में उपयोग किया जाता है तब लेखक को सावधानी से काम करना* होता है। ऐसा न हो कि कथोपकथन में पात्रों के चरित्र का अंकन न होकर लेखक के व्यक्तित्व उसकी प्रकृति और गुणों की अभिव्यक्ति हो जाय। एतदर्थ पात्रो के संवाद में उनके ही गुणों और दोषों का अंकन करना आवश्यक है। कथोपकथन स्वाभाविक और बोलने वाले की मानसिक स्थिति कठोरता सहानुभूति आदि को व्यक्त करने वाला भी हो।

एक बात और आवश्यक है। कथोपकथन स्वाभाविक होना चाहिये। इसके लिए लेखक पात्रों की शिक्षा संस्कृति आदि के अनुसार कथोपकथन की भाषा को रूप प्रदान करता है। शिक्षित लोगों की भाषा का शब्द-चयन और वाक्य-विन्यास एक देहाती अपढ़ की बातचीत के शब्द-चयन और वाक्य-विन्यास से भिन्न होता है।

पात्रों का संवाद स्वाभाविक होते हुए भी भावपूर्ण होना आवश्यक है। किन्तु वह दैनिक जीवन की नकल मात्र न हो। लेखक कथोपकथन को बार-बार पढ़कर उसकी धारा प्रवाहिकता स्वाभाविकता और प्रभावोत्पादकता का पता लगा सकता है।

रेडियो से सुनाई जाने वाली कहानी का स्वाभाविक विश्वसनीय और घटना प्रधान होना आवश्यक है। कथोपकथन भी इन गुणों के विकास में सहायक हो सकता है। ऐसा करने में लेखक की सफलता है।

देश-काल और वातावरण

कहानी की प्रत्येक घटना कोई विशेष समय स्थान और स्थिति में होती है। जिस स्थान पर वह घटना होती है उसे "देश" कहते हैं उसके समय को "काल" का नाम दिया जाता है और घटना के चारों ओर जो वस्तु व्यक्ति अथवा प्रकृति होती है उसे "वातावरण" कहते हैं। रेडियो लेखक आवश्यक रूप से कहानी की घटनाओं के 'कहां' और 'कब' होने की ओर भी संकेत करता है। कहानी के देश काल और वातावरण इन तीनों में समरूपता होनी चाहिये। मनुष्य के मानसिक जीवन को उसकी परिस्थिति भी प्रभावित करती है। ऐसा न हो कि निराश नायक का फूलों और फलों से सुशोभित वाटिका में लाकर खड़ा कर दिया जाय। शुष्क प्रकृति ही उसका उचित वातावरण हो सकता है। रेडियो कहानी में वातावरण का अपना महत्व है। रेडियो कहानी के विस्तार-संकोच के कारण वातावरण का चयन संकेतात्मक रूप में ही किया जा सकता है।

आरम्भ उत्थान और अन्त

कहानी के शरीर-विज्ञान के तीन अंग हैं—आरम्भ उत्थान और अन्त। कहानी का आरम्भ ऐसा हो जो पाठकों के ध्यान को तुरन्त आकर्षित करले और उन्हें उसके आगे के भाग को सुनने को बाध्य करदे। वह उनकी रुचि को जागृत करने में सफल हो। आरम्भ में लेखक कहानी की वह घटना अंकित कर सकता है जो अत्यन्त रोचक अद्भुत अथवा उदात्त भावों को जगाने वाली हो। यह आवश्यक नहीं कि जो घटना पहिले हुई हो उसका बयान भी पहिले ही किया जाय। कथा-विकास में बाद आनेवाली महत्वपूर्ण घटना का अंकन पहिले करें, फिर उसका सम्बन्ध पूर्व घटना से किया जा सकता और तत्पश्चात कथा विकास के आगे की घटनाओं को चित्रित किया जा सकता है। जिस घटना व्यक्ति अथवा वस्तु के वर्णन से कहानी का आरम्भ किया जाय वह पाठकों के ध्यान को आकर्षित करने में अवश्य समर्थ होनी चाहिये।

अच्छी कहानी के आरम्भ म एक और विशेषता होती है। कहानी दुखान्त हो अथवा सुखान्त उसका आरम्भ भी वैसा ही होना आवश्यक है। एक गम्भीर आरम्भ एक गम्भीर कहानी का द्योतक होता है।

कहानी का आरम्भ संवाद से हो सकता है मुख्य पात्र के भावावेशपूर्ण कार्य से हो सकता है घटना से हो सकता है किन्तु प्राय वर्णन से न होना ही उचित है।

कहानी के आरम्भ के पश्चात कथा की प्रारम्भिक स्थिति का स्पष्टीकरण किया जाता है। स्थिति का यह स्पष्टीकरण व्यापक वर्णन के रूप में न हो। कहानी की घटनाओं के क्रमिक विकास के द्वारा ही यह कार्य हो जाना आवश्यक है।

कहानी के प्रारम्भ के समान ही उसका अन्त भी चित्ताकर्षक ढंग से होना अपेक्षित है। वह स्वाभाविक हो। पाठक यह अनुभव करें कि अब कुछ कहने के लिए नहीं रह गया है। कहानी के चरमोत्कर्ष और परिणाम एकाकार हो जायें तो अति उत्तम है। कहानी के अन्त में ऐसे वाक्य और विचारों का प्रयोग हो जो पाठकों के मन में स्थायी प्रभाव उत्पन्न करदे। किन्तु इसके लिए कहानी के अन्त में अतिशय भावुकता का परिचय देना उचित नहीं है।

भाषा-शैली

रेडियो के लिए लिखित कहानी की भाषा का सरल होना परमावश्यक है। रचना लिखने और उसे भेजने के सामान्य नियमों के सिवाय लेखक को एक और बात का ध्यान रखना चाहिये। लेखक के लिए ऐसे क्रियापद का प्रयोग करना उचित है जो पात्रों, घटनाओं अथवा वस्तुओं की गति को प्रकट करते हों उससे यह प्रतीत हो कि कोई कार्य उसके समय अभी हो रहा है या कोई घटना अभी घट रही है। "वह वहां पहुँच जाता है" के स्थान पर "वह वहां पहुँचा" का प्रयोग अपेक्षित है। "वह वहां पहुँचा" कहने पर उसका वहां पहुँचने का कार्य श्रोताओं की आंखों के सामने होता दिखाई देता है। फलतः ऐसे क्रियापद के उपयोग से उनके मानस-पटल पर चलचित्र के समान घटनाएँ और पात्र प्रकट होते रहते हैं। श्रोतागण रचना सुनते समय अपनी कल्पना के धरातल पर कहानी की घटनाओं को देखने में समर्थ हो जाते हैं। रेडियो की ध्वनि-भरी कहानी में भी इस प्रकार के क्रियापद का प्रयोग वांछनीय है।

प्रथम पुरुष में कहानी

कहानी लिखने की तीन मुख्य प्रणालियां हैं। ऐतिहासिक ढंग में लेखक इतिहासकार की भांति पात्रों के चरित्र और घटनाओं का वर्णन कर देता है। समय आने पर वह टीका-टिप्पणी भी करता है।

कहानी-लिखने के दूसरे ढंग में लेखक प्रथम पुरुष "मैं" या "हम" का प्रयोग करता है।

तीसरे प्रकार के ढंग में कहानी की घटनाओं के विकास और पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए पात्रों के बीच पत्रों का आदान-प्रदान करवाया जाता है।

रेडियो कहानी के लिए प्रथम पुरुष का प्रयोग करना लाभप्रद है। पात्र "मैं" के रूप में श्रोताओं को जो कुछ कहता है उस पर विश्वास करना सरल होता है। इस प्रणाली में अतिशयोक्ति की गुंजाइश भी कम रहती है। किन्तु इसमें एक दोष भी है। लेखक उन घटनाओं का वर्णन नहीं कर सकता है जो उस कथा कहनेवाले पात्र की पीठ के पीछे होती हैं। इस दोष के निवारण के लिए लेखक पात्रों के मध्य पत्र-व्यवहार और उपायों को समावेश कर दिया करते हैं।

आदर्श-स्थापना

कहानी लेखक उपदेशक नहीं है। किसी कहानी की सफलता आदर्श स्थापना से नहीं अपितु पाठकों पर पड़नेवाले उत्तम प्रभाव में निहित है। कहानी में आदर्श की स्थापना हो सकती है। जन-कल्याण के साहित्य में ऐसा होना युक्ति-संगत भी है। किन्तु लेखक कहानी में आदर्श को स्वतः उत्पन्न होने दे। पात्र अपने आदर्श का स्वयं निर्माण कर सकें इसीमें रचना की उत्तमता है। रेडियो-लेखक आदर्श का दूषण का प्रयत्न न करे, तो ठीक है। सीधी शिक्षा श्रोताओं पर प्रभाव भी नहीं डालती है वे उसे स्वीकार नहीं करते अपने चरित्र में नहीं उतारते।

रेडियो कहानी प्रायः घटना-प्रधान कहानी है। उसका एक-एक क्षण चित्ताकर्षक हो। उसमें संवाद तथा चरित्र-चित्रण तथा वातावरण का निर्माण करने में रचना कलेवर की सीमा को ध्यान में रखना होता है।

गीतों भरी कहानी

गीतों-भरी कहानी को लाखों लोग सुनते हैं। शायद ही कोई अन्य कार्यक्रम इतना सर्वप्रिय और आकर्षक होगा जितना कि गीतों भरी कहानी होती है। इसमें प्रायः शिक्षा और मनोरंजन का समन्वय रहता है।

गीतों-भरी कहानी रेडियो का अपना आविष्कार है। इस कहानी में गीतों का समावेश किया जाता है। कथा क्रम में अनेक स्थानों पर उपयुक्त गीत जोड़ दिये जाते हैं। इन गीतों का प्रयोग गद्य अथवा पद्य के साथ किया जा सकता है। गीतों-भरी कहानी का प्रारम्भ किसी कहानी के प्रसारण से हुआ है।

गीतों की उपयोगिता

संगीत मनुष्य को स्वभाव से ही प्रिय है। इसीलिए रेडियो-केन्द्रों के कार्यक्रम में संगीत को ५२ प्रतिशत से भी अधिक समय प्रदान किया जाता है। संगीत की सर्व-प्रियता के कारण गीतों-भरी कहानी श्रोताओं को अत्यन्त आनन्दप्रद लगती है। कहानी और गीत का मिश्रित कार्यक्रम मनुष्य के स्वभाव से मेल खाता है, उसकी रुचि को जागृत करने की क्षमता रखता है।

गीतों-भरी कहानी में संगीत अन्य प्रकार से भी उपयोगी होता है। गीत कहानी के कथा-विकास में सहायक हो सकते हैं और होने चाहियें। ये पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालते हैं, उनके प्रेम, मोह, विरह, व्यथा, आदर्श, ईर्ष्या और शील-स्वभाव की अभिव्यंजना करते हैं। यही नहीं युगलों में नायक और नायिका के बीच होने वाले गान-संवाद कथोपकथन का भी कार्य करते हैं। अनेक गीतों के ग्रामोफोन रेकार्डों का

प्रारम्भिक और पृष्ठभूमि का नाद-संगीत कहानी के लिए अनुकूल वातावरण की सृष्टि भी कर देता है। संक्षेप में यही कहा जाय कि गीतों के रेकार्ड ऐसे हों जो कहानी के विकास चरित्र-चित्रण कथोपकथन वातावरण आदि के प्रभाव को बढ़ाने में समर्थ हो सकें। यद्यपि गीतों से भरी कहानी में कहानी के सभी तत्व विद्यमान होते हैं तथापि कहानी लेखक के लिए गीतों का समावेश करते समय अनेक आवश्यकताओं की ओर सजग और सचेष्ट रहना होता है।

गीतों का चुनाव

फिल्मी गीतों भरी कहानी में गीतों के चुनाव का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता है। उसमें फिल्मी कहानी का रेडियो-रूपान्तर ही करना होता है। स्वतन्त्र गीतों भरी कहानी में लेखक सावधानी और समझदारी से गीतों के रेकार्डों का चुनाव करता है। एक बार एक लेखक ने एक रेडियो स्टेशन को गीतों-भरी कहानी भेजी। उस कहानी में सभी गीत जग मोहन के गाये हुए थे। प्रश्न था, 'क्या गीतों का यह चयन ८० प्रतिशत श्रोताओं को रुचिकर और आकर्षक लगेगा?' उत्तर नकारात्मक था। कहानी अस्वीकृत करदी गयी। इसी प्रश्न के प्रकाश में लेखक को अपनी कहानी के लिए गीतों का चुनाव करना चाहिये। यह आवश्यक नहीं कि एक ही गायक के गीत प्रत्येक श्रोता को कहानी के आदि से अन्त तक रुचिकर और आकर्षक लगें। 'भिन्न रुचिर्हि लोकः।' किसी को नारी की स्वर-लहरी अच्छी लगती है तो किसी को पुरुष की आवाज। एक ही आवाज में दस-बारह गीतों का न होना अत्यन्त आवश्यक है।

एक गीतों भरी कहानी में कुछ गीत पुरुष की आवाज में हों तो कुछ नारी के स्वर में। फिर श्रोताओं की अनेक भाव भावनाएं भी होती हैं। उनकी तुष्टि के लिए कुछ विरह-गीत हों तो कुछ मिलन-गीत भी हों। यह न हो कि केवल विरह-वेदना से ओत-प्रोत गीतों को ही सुना-सुनाकर आप

श्रोताओं को उसमें ही डुबो दें। सुख और दुख संयोग और वियोग आशा और निराशा हर्ष और विषाद ये दो भावनाएं आपको प्रत्येक श्रव्य चल-चित्र नाटक और कहानी में मिलेंगी। मिलन और विरह के गीतों का उपयुक्त चुनाव करके लेखक श्रोताओं की इन दोनों नैसर्गिक प्रवृत्तियों की तुष्टि कर सकता है और इस प्रकार अपनी कहानी को अधिक प्रभाव वाली बना सकता है।

गीतों की त्रिवेणी

गीतों में प्रयुक्त आवाजों की संख्या की दृष्टि से चल-चित्र में तीन प्रकार के गीत होते हैं एकाकी दुगाना और सहगान। एकाकी गीत में एक पात्र स्त्री अथवा पुरुष गीत गाता है, दुगाने में दो व्यक्ति भाग लेते हैं और सहगान (कोरस) में दो से अधिक लोग सम्मिलित होते हैं। साधारणतया दुगाने में एक स्त्री और पुरुष नायक और नायिका मिलकर गीत गाते हैं। ऐसे गीत में प्रेम और विरह की बातें होती हैं। सफल लेखक अपनी स्वतन्त्र मौलिक गीतों भरी कहानी में इन तीनों प्रकार के गीतों का प्रयोग करता है। ऐसा करना अपनी कहानी की स्वीकृति के लिए मार्ग तैयार करना है।

स्वाभाविक प्रयोग

कहानी में गीतों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से होना नितान्त आवश्यक है। किसी गीत के प्रयोग से ऐसा प्रतीत न हो कि कहानी के उस स्थल पर उस गीत का प्रयोग मेल नहीं खाता है। वह कथा के उस स्थल के सर्वथा और आवश्यकता के अनुकूल होना अनिवार्य है। यह न हो कि नायक की तो मृत्यु होगई हो और नायिका गाने लगे 'आइ गये बालम"। गीत कहानी के किसी स्थल पर जबर्दस्ती न ठूंसे जायें। कहानी का विकास ही ऐसा होना चाहिए कि वह एक विशेष गीत की मांग करता हो अपनी

उस विषम स्थिति में उस गीत को अपनी ओर खींच लेता हो। इसके लिए लेखक को ग्रामोफोन रेकार्ड को सावधानी से पूरा सुनकर उसका प्रयम ज्ञान लेना चाहिये और तब फिर यदि वह प्रसंग कहानी के उस स्थिति से मेल खाता हो तो उसका प्रयोग करना उचित होगा। किन्तु गीतों का प्रयोग कहानी में स्वाभाविक और सरल रूप से कर देना ही पर्याप्त नहीं है।

सान्निध्य दोष से मुक्त

साधारणतया दो गीतों का प्रयोग एक दूसरे से अत्यन्त समीप न हो। यह न हो कि एक गीत के एक मिनिट के कथा-प्रवाह के बाद ही दूसरा गीत प्रारम्भ हो जाय। जब दो तीन गीत कहानी में एक दूसरे के अत्यन्त समीप आ जाते हैं तो कथा-विकास और घटनाओं की गति मन्द पड़ जाती है। कथा नीरस होने लगती है। इस प्रकार कहानी के उद्देश्य चरमोत्कर्ष को प्राप्त करने में बाधा उपस्थित हो जाती है। कहानी के प्रवाह और श्रोताओं की रुचि के अनुकूल दो गीतों के बीच उचित मात्रा में प्रसंगों का विद्यमान होना आवश्यक है। दो गीतों के बीच कितना समय हो यह प्रश्न हमारा ध्यान इस बात की ओर ले जाता है कि एक कहानी में कितने गीतों को स्थान दिया जाय।

गीतों की संख्या

गीत भरी कहानी में गीतों के ग्रामोफोन रेकार्डों का प्रयोग किया जाता है। एक साधारण ग्रामोफोन रेकार्ड के बजने में तीन मिनिट का समय लगता है। तब फिर कितने मिनिट का संगीत रखा जाय अथवा कितने रेकार्डों का प्रयोग किया जाय यह एक महत्व का प्रश्न हो जाता है। इस प्रश्न का उत्तर तो इस बात पर निर्भर है कि स्वयं गीतों भरी कहानी कितने समय की है?

सामान्यतया एक गीतों भरी कहानी ४५ से ६० मिनिट तक की हो सकती है। ऐसी गीतों भरी कहानी में भी ना दस गीतों का प्रयोग किया जाता है। दस गीतों का प्रयोग करना एक साधारण नियम है अर्थात् तीस मिनिट का संगीत हो तो १५ २० मिनिट का कथानक गीत और गद्य का १ और २ के अनुपात में प्रयोग किया जा सकता है।

गीतों भरी कहानी के विभेद

गीतों भरी कहानी का कोई पूर्ण वर्गीकरण करना अत्यन्त कठिन है। यह तो बतस्या है। अपने अनुभव ज्ञान और कल्पना से लेखक विविध और विभिन्न प्रकार की गीतों-भरी कहानियों की रचना करते हैं। जिस लेखक की गीतों-भरी कहानी का स्वरूप जितना अधिक अभिनव और मौलिक होगा वह उतना ही अधिक सफल लेखक माना जायगा। गीतों भरी कहानी क कुछ रूपों का अधिक प्रचलन है।

फिल्मी और स्वतन्त्र

गीतों भरी कहानी के दो भेद मुख्य हैं, फिल्मी चल-चित्र का रूपान्तर और चलचित्र से स्वतन्त्र। लेखकों का रेडियो पर फिल्मी गीतों-भरी कहानी न भेजना ही बुद्धिमानी है। इस प्रकार की कहानी में लेखक की प्रतिभा का प्रकाशन नहीं हो पाता। यह तो अनुकृति मात्र है। यह तो लेखक के शब्दों में किसी की मूल और मौलिक कहानी का रूपान्तर मात्र है। दूसरी ओर एक फिल्म से स्वतन्त्र कहानी में लेखक अपनी कहानी के लिए एक मौलिक विषय को चुनता है और अपनी ही शैली में उसे लिखता है। यह लेखक की प्रतिभा और परिश्रम का परिणाम है। लेखक को ऐसी कहानियों की रचना पर विशेषरूप से ध्यान देना चाहिये। ऐसी रचनाओं की स्वीकृति की संभावना अधिक होती है।

चल-चित्र से स्वतन्त्र गीतों भरी कहानी के अनेक रूप हैं। गीतों भरी कहानी साधारण कहानी के समान ही होती है। अन्तर यह है कि इसमें गीतों का समावेश किया जाता है—सरस स्वाभाविक और समुचित स्थानों पर। इस प्रकार की कहानी के क्षेत्र में लेखकों के लिए पर्याप्त स्थान है। कभी कभी "पपीहा" "पंछी" अथवा "परदेसी" से संबंधित रेकार्डों के प्रयोग से एक कहानी सी रचना तैयार की जाती है। इस कहानी में नवीनता होते हुए भी स्थायित्व नहीं है साहित्यिकता होते हुए भी सम्पूर्णता नहीं है। कहना न होगा कि श्रोताओं की मानसिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने में इस प्रकार की कहानियां अपर्याप्त हैं।

एकबार रेडियो जोधपुर से एक भिन्न प्रकार की गीतों भरी कहानी का प्रयोग किया गया था। कहानी की सी रचना थी। इसमें गद्य की कुछ पंक्तियों के पश्चात् एक गीत का रेकार्ड जोड़ दिया जाता था। पद्यावली में दीवाली से संबंधित गीतों को संजोकर जीवन और जगत के विभिन्न चित्र प्रस्तुत किये गये थे। "गीतों भरी दीवाली" का यह कार्यक्रम श्रोताओं को बहुत पसन्द आया। इसमें भी नवीनता थी किन्तु सम्पूर्णता का अभाव था। हां विशेष अवसरों पर इस प्रकार की गीतों भरी कहानी के अभिनव रूपों की रचना कर लेखक रेडियो-विभाग और सुननेवालों में अपने लिए आदर का स्थान बना सकता है।

भाषा-शैली

रेडियो कहानी की भाषा-शैली और साधारण कहानी की भाषा-शैली में कोई अन्तर नहीं है। पर रेडियो कहानी में क्रियापद के प्रयोग पर अधिक ध्यान देना होता है। क्रियापद ऐसा न हो जो कहानी की घटना अथवा पात्रों के कार्य एवं उनकी प्रतिक्रिया का द्योतक न होकर उसकी समाप्ति पर उसका वर्णन मात्र करता हो यथा "अमीर

वहीं पर पहुंच जाता है। उसका कलेजा धक धक करने लगा।" होना यह चाहिये "समीर वहां पहुंचा। उसका कलेजा धक धक करने लगा।" मेरी समझ में यह विभेद बहुत महत्व का है। एक विषादपूर्ण घटना का उसकी समाप्ति पर वर्णन मात्र करता है तो दूसरा श्रोता के मानस-पटल पर उसका यथातथ्य चित्र प्रस्तुत करने की क्षमता रखता है। लेखक की भाषा-शैली ऐसी हो कि जिसके फल स्वरूप श्रोता यह कहे कि कहानी की घटनाएं उसके सामने हो रही हैं। उसके कल्पना-लोक में घटनाओं तथा प्रसंगों का चित्र स्पष्ट हो जाना आवश्यक है।

भाषा के सम्बन्ध में एक बात और है। यह भाषा ऐसी हो कि प्रस्तुतकर्ता उसे सरलता स्वाभाविकता एवं सफलता से बोल सके।

सावधानी और समाप्ति

रेडियो स्टेशन पर कभी बाहर से गीतों-भरी कहानी स्वीकृत की जाती है और कभी नहीं। फिल्म से स्वतन्त्र गीतों-भरी कहानी का तो प्रायः स्वागत किया ही जाता है। फिल्मी गीतों-भरी कहानी में मौलिकता न होने के कारण से आवश्यकता होने पर विभागीय लेखकों से ही तैयार करवायी जाती है। इसमें स्वतन्त्र लेखकों के लिए अधिक स्थान नहीं है। फिर भी फिल्मी गीतों-भरी कहानी का रेडियो-रूपान्तर तैयार करने के पूर्व लेखक सम्बन्धित रेडियो केन्द्र से इस विषय में जानकारी प्राप्त कर सकता है कि विभाग से बाहर के लेखकों द्वारा लिखित ऐसी कहानी स्वीकृत की जा सकेगी या नहीं।

यदि लेखक की कहानी का विषय मौलिक और घटनाओं से पूर्ण है, उसके गीत कहानी के सब तत्वों को बल प्रदान करते हैं और उनका उचित मात्रा में उचित स्थानों पर उचित रूप से प्रयोग हुआ है तो लेखक की सफलता निश्चित ही जानिये।

रेडियो—नाटक

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कॉर्पोरेशन लंदन से एक वर्ष में १२ रेडियो-रूपक प्रसारित किये जाते हैं। आज रेडियो संसार की सर्व प्रिय रचना है। इसके सम्बन्ध में वहां नित नये प्रयोग और परीक्षण किये जाते हैं। रेडियो से प्रसारित होने वाला ध्वनि-रूपक अथवा नाटक साहित्य के लिए एक नयी प्रकार की रचना है। यह रंगमंच के रूपक और सिनेमा कहानी से अनेक बातों में भिन्न है।

रूपक क्या है?

आप पूछेंगे "रूपक फिर किसे कहते हैं और रेडियो-रूपक और साधारण नाटक एक दूसरे से किस प्रकार भिन्न हैं?" रूपक एक क्रिया-कहानी है। यह कहानी जो क्रिया अर्थात् "एक्शन" के द्वारा कही जाती है।

भारतीय आचार्यों ने साहित्य अथवा काव्य के दो भेद किये हैं। एक श्रव्य-काव्य है और दूसरा दृश्य-काव्य। श्रव्य-काव्य पठन-पाठन के लिए होता है यथा निबन्ध कहानी कविता आदि। दृश्य-काव्य को साहित्य जगत में रूपक या नाटक का नाम दिया जाता है। "रूपक में अभिनय करने वाला किसी दूसरे व्यक्ति का रूप धारण करके उसके अनुसार हाव-भाव करता है और बोलता है इसलिए इस काव्य को रूपक का नाम दिया जाता है।" "रूपक साहित्य के अन्तर्गत तभी समझा जाता है जब उसमें किसी व्यक्ति के कार्यों के अनुकरण के साथ कथोपकथन का भी समावेश किया जाता है।"* उसमें कहानी या उपन्यास के वे सभी तत्व विद्यमान होते हैं जिन्हें कथानक

*रूपक रहस्य—ले० डा० श्याम सुन्दर दास

पात्र चरित्र-चित्रण कथोपकथन देश-काल और वातावरण के नाम से पुकारा जाता है।

अभिनय अथवा व्यक्ति के कृत्यों का अनुकरण करना रूपक का उद्देश है। अभिनय में कुछ व्यक्ति किसी अन्य व्यक्तियों का आंगिक (चलना फिरना आदि) वाचिक (भाषा संबंधी) आहार्य (वेश-भूषा संबंधी) और सात्विक भावों (हँसना रोना रोमांचादि) का अनुकरण करता है। इस प्रकार रूपक में चार प्रकार के अभिनय का समावेश किया जाता है। इस अभिनय में जीवन के एक अथवा अनेक पहलुओं का प्रदर्शन किया जा सकता है।

एकांकी नाटक

एक सम्पूर्ण नाटक में अनेक अंक होते हैं और एक अंक में एक अथवा अनेक दृश्य। यह विभाजन नाटक के कथानक के विकास के अनेक स्तरों के कारण आवश्यक भी है। इस कथा-विकास में अनेक मुख्य और गौण घटनाओं का प्रयोग किया जाता है। दूसरी ओर एकांकी नाटक एक ही अंक में समाप्त होनेवाला नाटक है। इसमें केवल एकमात्र सुस्पष्ट, सुनिश्चित उद्देश्य होता है। इसमें गौण प्रसंग और पात्र समस्या और घटना को कोई स्थान नहीं दिया जाता है।

एकांकी नाटक की कथा संक्षिप्त और सीमित होनी चाहिये। इसमें एक चमत्कारी घटना एक उद्दीप्त क्षण अथवा एक तीव्र परिस्थिति का एक ही अंक में वर्णन और व्याख्या होनी अनिवार्य है।

नाटक के तीन क्षेत्र

वर्तमान समय में तीन क्षेत्रों में नाटक का प्रयोग होता है एक रंगमंच है दूसरा सिनेमा और तीसरा रेडियो। इन तीनों क्षेत्रों में तीन भिन्न

ग्राम को तुच्छ मान कहकर गृह-त्याग करके चला जा रहा है। वह किस विचारवाले दरवाजे से किस प्रकार चलता हुआ जा रहा है, इन तथ्यों की पूर्ति श्रोतागण अपनी कल्पना के द्वारा करते हैं। अतः एक बार जब लेखक ध्वनि-प्रभाव कथोपकथन और श्रोताओं की कल्पना के उपयोग से आंगिक (चलना फिरना आदि) आहार्य (वेश भूषा संबंधी) और सात्विक (हँसना रोना आदि) अभिनयों की पूर्ति कर लेता है तब फिर श्रोतागण अपने कल्पना-लोक में एक के बाद दूसरा चित्र देखने लगते हैं और इतने स्पष्टतर होते जाते हैं। तब फिर वे उन चित्रों को कृत्रिम नहीं वास्तविक समझने हैं।

रेडियो-रूपक ध्वनि और कल्पना पर ही आधारित होने के कारण मंच और सिनेमा के नाटकों से एक अलग रूप है। वह एकांकी नाटक के समान है किन्तु उसकी रचना और प्रसारित करने के नियम और सिद्धान्त मंच के एकांकी नाटक से अनेक बातों में पूर्णतया भिन्न हैं। न उसमें रंगमंच की आवश्यकता है, न वेश-भूषा की न रोशनी की और न सुन्दर पर्दों की ही। यही कारण है कि एकांकी नाटक के समान होते हुए भी उसमें कथानक पात्र चरित्र-चित्रण कथोपकथन और भाषा-शैली में अनेक बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है। उसकी रचना के अपने विशेष नियम हैं।

रेडियो-रूपक का कथानक

कहानी अथवा एकांकी नाटक के समान ही लेखक ध्वनि-रूपक की कथा के सर्वोत्तम उद्दीप्त क्षण प्रभावशाली स्वस्थ चरमोत्कर्ष (क्लाइमैक्स) को प्राप्त करता है। रेडियो-रूपक की यह चरम-सीमा उसका सार तत्व है। जितना अधिक प्रभावपूर्ण नाटक का चरमोत्कर्ष होगा उतना ही अधिक वह सफल हो सकेगा। नाटक की अन्य घटनाएँ तो इसी उद्दीप्त क्षण को उत्पन्न करने का साधन मात्र होती हैं। वे क्रमबद्ध सीढ़ियों के

समान नाटकीय कथा को उस उद्दीप्त क्षण का भार न आती है जिसे हम क्लाइमैक्स कहते हैं। वे कहानी के कथा प्रवाह को इधर उधर भटकाती नहीं।

रेडियो-रूपक में वेग-सम्पन्न घटना-प्रवाह होता है। उसमें किसी अनावश्यक-प्रसंग और घटना का समावेश करना निषिद्ध है चाहे वह कितनी ही आकर्षक क्यों न हो। उसमें मुख्य-मुख्य घटनाओं का एक सुसम्बद्ध घटना क्रम होना अनिवार्य है। यद्यपि अप्रधान और अप्रासंगिक घटनाओं के समावेश न करने और थोड़े समय में एक प्रसंग को समाप्त करना रेडियो रूपक के लिए आवश्यक है तथापि नाटककार को एक वाक्य में ही चरमोत्कर्ष उद्दीप्त क्षण की अभिव्यंजना न कर डालनी चाहिये। उद्दीप्त क्षण के समीप कथा को पहुँचा कर कुछ समय प्रभावशाली वाक्यों से उसकी व्याख्या करना उचित है।

संघर्ष की आवश्यकता

संघर्ष नाटक का प्राण है। नाटकीय कहानी का उदय संघर्ष से ही होना चाहिये। पूरे नाटक में संघर्ष के अनेक पहलू दिखाये जाते हैं। किन्तु एकांकी नाटक में संघर्ष का एक पहलू ही प्रदर्शित किया जाता है। संघर्ष के फलस्वरूप नाटक का घटना प्रवाह उत्तर गति से संचालित होता है। इसलिए साधारणतया प्रत्येक अच्छे ध्वनि-रूपक में संघर्ष महत्व का स्थान रखता है।

यह संघर्ष द्विरूपा है। एक तो वह संघर्ष जो पात्रों के मस्तिष्क में दो विचारों के बीच में होता है। इसे अन्तर्द्वन्द्व कहते हैं। दूसरे प्रकार का संघर्ष दो सिद्धान्तों दो परिस्थितियों या पात्रों दो हितों दो व्यक्तियों अथवा दो प्रवृत्तियों के बीच होता है। इन दो विरोधी तत्वों के बीच जो संघर्ष होता है उसके फलस्वरूप अनेक घटनाएं होती हैं और कहानी अपने उद्दीप्त क्षण अथवा चरमोत्कर्ष तक पहुँच जाती है।

अन्तर्द्वन्द्व वाले संघर्ष में दो विरोधी विचार पात्र को दो परस्पर असंगत कार्य करने के लिए बाध्य करते हैं। रंगमंच के रूपक में पात्रों की उद्विग्नता अथवा इधर-उधर घूमना, पाँव पटकना, दाँत पीसना, नासिका के मुँह का रंग उड़ना आदि शारीरिक क्रियायें पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व को प्रकट कर सकती हैं। इन क्रियाओं को आँखों से देखकर दर्शक-गण पात्रों के मन में चलने वाले अन्तर्द्वन्द्व से अवगत हो सकते हैं। किन्तु रेडियो-रूपक केवल कान ही से सुना जाता है। इस कारण श्रोता पात्रों की उद्विग्नतावस्था, इधर-उधर पाँव पटक कर चलना, दाँत पीसना और मुँह के उड़े रंग को देखने में असमर्थ है। श्रोताओं को पात्रों के इस अन्तर्द्वन्द्व का ज्ञान प्रदान करने के लिए लेखक संवाद के सिवाय दो अन्य साधनों का उपयोग कर सकता है, एक तो स्वगत-कथन और दूसरा उपपात्र यथा नौकर आदि। स्वगत-कथन में पात्र अपने स्वयं से बातें करता है। रंगमंच के रूपक में इसका प्रयोग कृत्रिम सा लगता है। विशेष परिस्थिति में स्वाभाविक रीति से स्वगत-कथन का प्रयोग अवश्य किया जा सकता है यथा पागल पात्र, आवेश की अवस्था में आदि। मुख्य पात्र के अन्तर्द्वन्द्व को प्रकट करने के लिए गौण पात्र का प्रयोग उस समय तक नहीं करना चाहिये जब तक कथा-प्रवाह में उसकी उपस्थिति अनिवार्य न हो। रेडियो-रूपक में तो अन्तर्द्वन्द्व का समावेश करने में इन बातों का विशेष ध्यान रखना अनिवार्य है।

बाह्य संघर्ष

नाटक में अन्तर्द्वन्द्व का अपना महत्व है। किन्तु इससे अधिक भी महत्व घटनाओं और पात्रों के बीच होनेवाले संघर्ष का है। यह बाह्य संघर्ष नाटक का प्राण है। इसमें दो पात्रों में आक्रमण और प्रत्याक्रमण होते हैं

दो विरोधी विचार धाराओं में संघर्ष हुआ है या हितों में टक्कर होती है अथवा कोई पात्र अपने क्रूर भाग्य-देवता से संघर्ष करता हुआ दिखाया जाता है। जिस नाटक में यह सघर्ष जितना तीव्र होगा वह नाटक उतना ही अधिक सफल हो सकेगा। जब दो विरोधी तत्वों के बीच संघर्ष होता है तो उस सघर्ष के प्रश्न पर एक विवाद सा उठ खड़ा होता है।

संघर्ष में जो विरोध उत्पन्न होता है वह दो प्रकार से प्रकट हो सकता है। एक तो पात्रों की क्रिया और दूसरा सभाषण के रूप में जिसमें पात्र मुख्य रूप से विरोधी विचार प्रकट करते दिखाये जाते हैं।

क्रिया का महत्व

विरोधी परिस्थिति में पात्रों में एक प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। यह उसके सम्पूर्ण जीवन में भूकम्प सा उत्पन्न कर देती है। इसी मतुखकारी विरोध के फलस्वरूप वे दुखी होते हैं, चकित होते हैं रोते हैं भागते है आनन्दित होते हैं झगड़ते हैं और अन्य मानवीय शारीरिक गति-चेष्टाएं करते हैं। वे उस सघर्ष में सफल होने का साधन जुटाते हैं। एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं। ये क्रियाएँ या एकधन नाटकीय संघष को प्रकट करते हैं तो उस समय दर्शक उत्सुकता से यह सोचते हैं कि वह पात्र अब क्या काय करेगा क्या करने जारहा है कथा के संघर्ष का क्या परिणाम निकलेगा। इस उत्सुकता के कारण दर्शकों अथवा श्रोताओं में नाटक की कथा के परिणाम को जानने के लिए रुचि बनी रहती है। क्रिया को महत्व का स्थान देने से कथा-विकास स्वाभाविक ढंग से सम्पन्न हो जाता है। क्रिया को नाटक में समुचित स्थान प्रदान करना अत्यन्त आवश्यक है।

सम्भाषण के द्वारा

सम्भाषण के द्वारा भी नाटकीय संघर्ष को प्रकट किया जाता है। इसमें पात्र एक स्थान पर एकत्र होकर विरोधी विचार प्रकट करते हैं।

वे एक अचल मूर्तियों के समूह की भांति संघर्ष की समस्या पर केवल वार्तालाप करते दीख पड़ते हैं । वे प्रतिकूल परिस्थिति में कुछ कार्य न करके आरोप और प्रत्यारोप करते हैं । इधर पात्र तो संघर्ष के विषय पर वाद-विवाद करते हैं और उधर कथा-विकास अपने चरम-लक्ष्य तक पहुंच जाता है । इसमें क्रिया और घटनाओं को गौण स्थान प्रदान कर दिया जाता है । श्री भगवतीचरण वर्मा का एकांकी नाटक "सबसे बड़ा आदमी" इसका एक अच्छा उदाहरण है । "सबसे बड़ा आदमी" में चार व्यक्ति एक रेस्टोरां में बैठे कैसी नेपोलियन लेनिन और गांधी में सबसे बड़ा आदमी कौन है, इस विषय पर वाद-विवाद करते हैं । सम्वादों के साथ साथ एक दो छोटी मोटी घटनाएं होती हैं और नाटक अपनी चरम परिणति तक पहुंच जाता है ।

रेडियो के लिए जहां तक हो सके लेखक को सवाद-प्रधान रूपक नहीं लिखने चाहिये । सम्भाषण से श्रोताओं का मन तुरन्त ऊब सकता है । किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा स्थिति की ओर ध्यान को आकर्षित करने में उसका गतिशील होना एक आवश्यक कारण माना जाता है । यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है । चतुर नाट्यकार अपने नाटक में क्रिया को पर्याप्त स्थान प्रदान करता है । घटना और क्रिया के स्थान पर सम्भाषणों के प्रयोग से सफल होनेवाले नाटकों का प्रणयन केवल प्रतिभा-सम्पन्न लेखक ही कर सकते हैं । सम्भाषण का नाटक में अपना स्थान तो है । सम्वाद के बिना नाटक की कल्पना ही नहीं की जा सकती है । ऐसा न हो कि सम्भाषण को दीर्घाकार रूप प्रदान करने के लिए क्रिया की अवहेलना करदी जाय । ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी के नाट्यकारों ने क्रिया के महत्व को अभी तक पूर्ण रूपेण समझा नहीं है । किन्तु अब सम्वाद रूपक का दूसरा नाम सा होगया है । यह असन्तोषकारी स्थिति है । श्री प्रभाकर माचवे ने इसकी आलोचना करते हुए कहा है "नाटक अब सम्वादों में आकर सिमट गया है और सम्वादों में जितनी अधिक

प्रतीतिप्रिय (एबस्ट्रैक्ट) दुरूह वाक्य रचना होती है, वह उतना ही बड़ा नाटककार माना जाता है'' । सच तो यह है कि नाटक में क्रिया को अपना महत्व देना नाटक की आत्मा को समझ लेना है । यह बात अवश्य है कि क्रिया के अतिशय प्रयोग से सुननेवाले भौंचक्के भी हो सकते हैं । क्रिया और कथोपकथन दोनों का संतुलित उपयोग ही एक सुन्दर रचना की पहचान है । किन्तु इन दोनों का नाटक की कथा से संबंधित होना अति आवश्यक है। यह न हो कि बिना बात ही आपके पात्र दौड़ने भागने सिसकने और रोने लगें ।

रूपक में क्रिया को प्रकट करने के लिए लेखक दृश्य बदलता है । नये पात्रों का समावेश करता है और प्रतिकूल परिस्थिति में पात्रों में उत्पन्न होने वाली शारीरिक और सात्विक मानसिक प्रतिक्रियाओं और घटनाओं के घात-प्रतिघात का अंकन करता है । रेडियो-रूपक में लेखक दृश्यों को बड़ी सरलता से बदल सकता है । वह मात्र से कल एक देश से दूसरे देश और पृथ्वी से आकाश तक रूपक के घटना-चक्र को ले जा सकता है ।

रंगमंच पर अभिनीत होनेवाले रूपक में दर्शक पात्रों की क्रिया आंखों से देख सकते हैं । किन्तु रेडियो-श्रोता केवल कान ही के द्वारा इसका ज्ञान प्राप्त करता है । इन क्रियाओं और शारीरिक गति-चेष्टाओं का ज्ञान श्रोताओं को प्रदान कराने के लिए लेखक उनके मानस-पटल पर उनका चित्र प्रस्तुत करता है। इस कार्य के लिए वह संगीत प्रसारक ध्वनि-प्रभाव और सम्वाद का प्रयोग कर सकता है । इन साधनों के उपयोग से श्रोताओं को उनके मानसिक धरातल पर क्रियाओं का बोध किस प्रकार कराया जाता है इसका विवरण आगे के परिच्छेद में दिया गया । यथा पदचाप से पात्र के जाने अथवा भागने की क्रिया का बोध कराया जा सकता है ।

संकलन त्रय क्या है

किसी समय नाटक में संकलन त्रय के निर्वाह की पद्धति भी चल पड़ी थी। संकलन त्रय का सीधा सा अर्थ यही होता कि नाटक में एक ही स्थान पर, एक ही समय में होनेवाले एक ही प्रसंग का समावेश होना चाहिये। इसे स्थान-संकलन काल-संकलन और वस्तु-संकलन के नाम से पुकारा जाता है। डा. रामकुमार वर्मा के एकांकी नाटक 'दस मिनिट' में संकलन त्रय का निर्वाह देखा पड़ता है। इसमें नाटक के आदि से अन्त तक एक ही स्थान महादेव का कमरा है, यहां पर एक ही समय में होने वाली एक ही घटना महादेव का क्रमरोग और उसकी बहन के लिए त्याग करने का अंकन हुआ है। एकांकी नाटक के विषय में कथा विस्तार के संकोच के कारण अनेक एकांकी नाटककारों ने संकलन त्रय को उसके लिए आवश्यक माना है। सेठ गोविन्द दास के शब्दों में ' नाटक के लिए संकलन त्रय जो नाट्यकला की दृष्टि से विकास के लिए बड़ा भारी अवरोध है, वहां संकलन त्रय कुछ हेर फेर के साथ एकांकी नाटक के लिए जरूरी चीज है। संकलन त्रय में संकलन त्रय अर्थात् नाटक का एक ही समय की घटना तक परिमित रहना तथा एक ही दृश्य के सम्बन्ध में होना तो एकांकी नाटक के लिए अनिवार्य है। वस्तु-संकलन का यह अर्थ नहीं कि नाटक में एक दृश्य का अंकन हो अपितु एकांकी नाटक में जिन दृश्यों या घटनाओं का अंकन हो उन घटनाओं में सुसम्बद्धता और एकरूपता होनी आवश्यक है।

संकलन त्रय के महत्त्व को एकांकी नाटक में स्वीकार करते हुए भी लेखकों ने उसकी सर्वथा अनिवार्यता पर जोर नहीं दिया है। मंच से बंधे एकांकी नाटकों में कथा-संकोच को निभाने के लिए संकलन त्रय वस्तु-संकलन और काल-संकलन सहायक हो सकते हैं।

रेडियो-रूपक के श्रोताओं और पात्रों में रंगशाला के दर्शकों और कलाकारों के समान निकट का संबंध नहीं है । रेडियो-रूपक को समझने में और उसका आनन्द प्राप्त करने में श्रोताओं को अपनी कल्पना का सहारा लेना पड़ता है । श्रोताओं की कल्पना को क्रियाशील करने में लेखक एक से अधिक स्थानों और समय के दृश्यों को प्रकट करता है । अलग अलग स्थानों और विभिन्न समय के चित्रों को अभिव्यक्त करके लेखक सफल रेडियो नाटक की रचना कर सकता है और करता है । तब यों कहा जाय कि रेडियो-रूपक में स्थान और काल संकलन का पालन करना आवश्यक नहीं है । नाटक की घटनाओं और प्रसंगों के प्रभाव में एकरूपता रखने के लिए वस्तु-संकलन का अवश्य पालन किया जाना चाहिये अर्थात् रेडियो-रूपक में अलग स्थानों और समय पर होनेवाली घटनाएं आपस में सुसम्बद्ध होती हैं । यदि रेडियो-रूपक में लेखक संकलन-त्रय का पालन करना चाहे तो कर सकता है परन्तु किन्तु घटनाओं और कथाप्रवाह में बाधा डालकर ऐसा नहीं किया जाना चाहिये ।

रेडियो-रूपक के पात्र

रेडियो कहानी के पात्रों की विशेषताएं रेडियो-रूपक के पात्रों में भी विद्यमान रहती हैं । पात्र घटनाओं के घात-प्रतिघात का संचालन करते हैं । नाटक में प्रधान पात्र को नायक कहते हैं । नायक नाटकीय कथा की शृंखला को अग्रसर करता हुआ उसे अंत तक ले जाता है । मुख्य पात्र घटना-प्रवाह की गति को प्रभावित करता है । प्रो० सत्येन्द्र के अनुसार, "एकांकी नाटक में नायक-प्रतिनायक की कल्पना हो सकती है, वह ऐसे नाटकों में जिनमें प्रेम का बाह्य संघर्ष भी प्रस्तुत हो पर यह अनिवार्य नहीं ।"

एकांकी नाटक में किसी पात्र का समावेश करते समय लेखक को उसकी आवश्यकता पर पूर्ण विचार कर लेना अपेक्षित है । प्रत्येक पात्र

की अपनी आवश्यकता होती है । वे ऐसे व्यक्ति होते हैं जो अपने चारित्रिक प्रभावों अथवा स्वभावों के कारण श्रोताओं को आकर्षित और रुचिकर प्रतीत होते हैं वे यदि उत्तम अथवा अतिशय बुरे व्यक्ति होते हैं । साधारण जीवन में इस प्रकार के व्यक्ति दिखायी भी देते हैं । आवश्यकता केवल इस बात की है कि नाटककार की आँखें ऐसे व्यक्तियों को पहिचान सकें जो अपने प्रभावों अथवा स्वभावों के कारण श्रोताओं के ध्यान को उत्तेजित करने में समर्थ हों । अपनी कल्पना के द्वारा भी लेखक ऐसे पात्रों का निर्माण कर सकता है, परन्तु वे स्वाभाविक, विश्वसनीय और जीवित व्यक्तियों के समान प्रतीत होने चाहिये ।

रेडियो-रूपक के पात्रों का व्यक्तित्व प्रधान भी होना आवश्यक है श्रोता पात्र के व्यक्तित्व में अपने व्यक्तित्व की स्थापना करते हैं, प्रत्यक्ष रूप से वह स्वयं को किसी पात्र के रूप में देखता है । अतएव लेखक को ऐसे पात्रों की कल्पना करनी चाहिए जो श्रोताओं द्वारा पसंद किये जावें ।

साधारणतया पात्रों का रुचिकर होना ही पर्याप्त नहीं है । उनके जीवन में रुचिकर घटनाएं भी होनी चाहिये ।

रेडियो-रूपक में पात्रों की संख्या को सीमित रखा जाता है । जैसे व्यक्ति का श्रोता, पात्र को केवल नाम ही से पहिचानता और याद रखता है । इस कारण वह किसी पात्र के व्यक्तित्व से परिचित होकर भी उसे भूल सकता है । उसकी आवाज का रूपक के किसी पात्र के स्वर पर भूल कर वह असमंजस में पड़ सकता है कि यह कौन सा पात्र बोल रहा है । ऐसा अधिकतर उस समय होता है जब नाटक में बहुत से पात्रों का समावेश कर लिया जाता है अधिक पात्रों के होने से चरित्र-चित्रण भी अपूर्ण रह जाता है; कलाकारों के लिये माइक्रोफोन के सामने खड़े होने में असुविधा होती है । अस्तु रेडियो-रूपक के एक दृश्य में अधिक से अधिक पांच पात्रों का समावेश किया जा सकता है ।

का व्यय भी अवश्य बढ़ता है । रूपक में भाग लेने वाले कलाकारों को रेडियो विभाग पारिश्रमिक प्रदान करता है । परन्तु वह अनावश्यक पात्रों के समावेश पर पानी की भाँति धन बहाने को भी तैयार नहीं है । अतएव रेडियो-रूपक में बिना स्पष्ट और उचित प्रयोजन के पात्रों की संख्या का बढ़ाना युक्तिसंगत नहीं है । गौण पात्र उत्तेजक (विरोधी आदि) माध्यम (मित्र आदि) और सूचक (दास दासी आदि) का कार्य कर सकते हैं ।

चरित्र-चित्रण

रूपक में पात्रों के परिचय से ही उनके चरित्र-चित्रण का प्रश्न उपस्थित हो जाता है । इसमें पात्रों के चरित्र का उनके गुणों और प्रकृति का अंकन करने के दो साधन हैं । एक तो पात्र की क्रिया या व्यवहार के द्वारा और दूसरा उसके अथवा अन्य पात्र के सम्वाद के माध्यम से । जहाँ तक हो सके पात्र के व्यवहार में उसके चरित्र-गुणों अथवा अवगुणों को प्रकट करना उचित है ।

रेडियो-रूपक में पात्रों के चरित्र की विशद व्याख्या करने का स्थान नहीं है । उसमें उनके चरित्र की कुछ ही आकर्षक और प्रभावकारी विशेषताओं पर प्रकाश डाला जा सकता है । चरित्र-चित्रण में लेखक उन सभी सिद्धान्तों का उपयोग कर सकता है जिनका प्रतिपादन रेडियो कहानी के चरित्र-चित्रण में किया गया है । किन्तु चरित्र-चित्रण का कथोपकथन से भी बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है । कथोपकथन के अभाव में तो साहित्य-जगत में रूपक की कल्पना भी नहीं की जा सकती है ।

कथोपकथन

सजीव कथोपकथन पर एक रेडियो-रूपक की बहुत कुछ सफलता निर्भर है । नाटकीय कहानी की घटनाओं के घात प्रतिघात और

विशेषरूप से संकट की अवस्था अथवा नाटक का चरमोत्कर्ष मात्र की मुख्य विशेषता अथवा विषमता प्रकृति और प्रवृत्तियों को प्रकट कर सकते हैं। पात्रों के कथोपकथन में उनके सूक्ष्मतर उद्देश्यों विचारों और आकांक्षाओं का भी चित्रण किया जा सकता है।

कथोपकथन नाटक की कथा को उसके चरमोत्कर्ष की ओर भी ले जाता है। इसके विपरीत ऐसा न हो कि सम्वाद पात्रों की वाचालता के नमूने मात्र बन जायें। वे कहानी को कथा-विकास की ओर लेजाने वाले होने चाहिये। लेखक सम्वादो म एसे अनेक तथ्यो को प्रकट कर सकता है जो कहानी को उसके पूर्व निर्धारित चरमोत्कर्ष की ओर अग्रसर करते हों। सम्वाद में एसी बातों का समावेश किया जा सकता है जो मानो कथा को आगे बढ़ाती हो अथवा उसके पूर्व-इतिहास को प्रकट करती हों या पूर्व घटनाओं की जानकारी प्रदान करती हों यथा

कंचना–(दुःख मिश्रित क्रोध से) तो इस का प्रतिशोध लेगा नहीं ?

कुणाल–हाँ (सोचता है) हो सकता है। (तैपते) छोटी मां मेरी परीक्षा ले चुकी। अब अपनी पराजय का प्रतिशोध भी लेना चाहती है, ठीक है परीक्षा में सफल हुआ। प्रतिशोध से भी पीड़ित होऊंगा।

कंचना–(कांपते) उस दिन आपको छोटी मां की वे दोनों मांसलवी बाहें काट देनी थी जब वे श्वेत नागिन के समान आप गले में लिपट गयी थीं।

इन संवादों में छोटी मां का प्रेम-प्रस्ताव कुणाल का उसे ठुकराना और इसके लिए मां का कुणाल से बदला लेने के विषय में श्रोताओं को बतायी गयी है, अर्थात् नाटक की कथा सुलझती है।

रूपक के सम्वाद संक्षिप्त होते हैं । लम्बे लम्बे सम्वादों की ओर श्रोताओं का ध्यान आकर्षित रखना अत्यन्त कठिन है । छोटे सम्वाद श्रोताओं को शीघ्र याद आने वाले होते हैं, अत्यन्त मर्मस्पर्शी और अति स्वा-भाविक । यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक सम्वाद एक दो पंक्ति का ही हो, तथापि परिस्थिति के अनुकूल पात्रों के सम्वाद छोटे या बड़े होते हैं । पात्र उपदेशक नहीं बनें और न वाचाल सम्वादों का ऐसा उपयोग किया जाय कि रूपक एक वाद-विवाद सा प्रतीत होने लगे ।

नाटक के कथोपकथन का मर्मस्पर्शी होना आवश्यक है । उसका एक एक वाक्य प्रभावोत्पादक और आकर्षक होता है । वह भावपूर्ण सजीव श्रुति-मधुर और सरल होता है । रेडियो-रूपक में तो इन गुणों का होना आवश्यक है ।

नाटक के सम्वाद बोलनेवाले के अनुरूप भी होते हैं । उनमें पात्रों के आदर्श, अंधविश्वास, आकांक्षा और ज्ञान व्यक्त हो सकता है । कहानी के कथोपकथन के अन्य नियम रूपक के कथोपकथन पर भी लागू होते हैं ।

देश-काल और वातावरण

लेखक पात्रों की परिस्थिति के अनुकूल प्रकृति आदि का भी चित्रण करता है । कभी कभी पात्रों की मन की स्थिति के अनुकूल भी प्रकृति अथवा वातावरण प्रस्तुत किया जाता है । पात्र के मन के विचारों के तूफान को लेखक प्रकृति की भयंकरता के द्वारा प्रकट कर सकता है । नाटक के दृश्य-विधान और दृश्यों को प्रभावकारी ढंग से प्रस्तुत करने में वाता-वरण का बड़ा महत्व है । परन्तु रेडियो-रूपक के वातावरण के उपकरण वस्तु, व्यक्ति और व्यवस्था अदृश्य हैं केवल कान के ही द्वारा उनसे अवगत होना पड़ता है । नाटक की आवश्यकता के अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करने में लेखक की व्यवहार-कुशलता है ।

कहानी के समान ही रेडियो–रूपक में लेखक को यह बताना होता है कि अमुक दृश्य किस समय और किस स्थान पर हो रहा है । नाटक की कथा के स्थान और काल का परिचय चतुर लेखक संकेतात्मक तथा स्वाभाविक ढंग से श्रोताओं को प्रदान करता है ।

आरम्भ उत्थान और अन्त

रेडियो–रूपक के आरम्भ विकास और अन्त पर लेखक विशेष ध्यान देता है । भारतीय नाट्यशास्त्र में आरम्भ प्रयत्न प्राप्त्याशा नियताप्ति और फलागम नाटक के कथा–विकास की ये पांच अवस्थाएं मानी गयी हैं । यहां रेडियो–रूपक के लिए आरम्भ विकास और अन्त पर ही प्रकाश डालेंगे ।

नाटक का आरम्भ चित्ताकर्षक और प्रभावपूर्ण होता है । रेडियो–रूपक में तो ऐसा आरम्भ अनिवार्य ही है । मंच के रूपक में तो कभी कभी नाटक की मूल कथा को आरम्भ करने के पूर्व एक छोटी सी भूमिका इस कारण से प्रस्तुत की जाती है कि मुख्य कथा के आरम्भ होने तक दर्शक लोग आकर अपने अपने स्थानों में बैठ जायें । परन्तु रेडियो–रूपक में इस प्रकार के आरम्भ को हानिकारक कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी । यदि आपके रेडियो–रूपक का आरम्भ तनिक भी नीरस और आकर्षण-हीन हो तो आपका सम्पूर्ण रूपक ही असफल हो सकता है । अनेक सुनने वाले रूपक का आरम्भ ही सुनकर यह जानना चाहते हैं कि यह रूपक मनोरंजक और सरस है या नहीं । जब रूपक का आरम्भ सुनकर उन्हें यह विश्वास हो जाता है कि यह रचना रमणीय नहीं है तब वे दूसरे रेडियो-स्टेशनों का कार्यक्रम सुनने को तत्पर हो जाते हैं । नाट्यकारों को अपने रूपक से अन्य रेडियो-केन्द्रों के श्रोताओं की ओर बहनेवाले इन श्रोताओं को अपने रूपक की ओर आकर्षित रखना चाहिये । आकर्षक आरम्भ प्राप्त करने का एक सामान्य नियम बताया जा सकता है ।

रूपक के प्रारम्भ में लेखक को मूल कथा की पृष्ठभूमि उसके कारण और परिस्थिति को प्रकट करने की आवश्यकता नहीं है। जो घटना पहिले हुयी है उसे पहिले और जो घटना बाद में हुयी है उसे बाद में न दर्शाना ही ठीक है। प्रारम्भ के लिए यह बात विशेष रूप से कही जाती है। रेडियो-रूपक का प्रारम्भ नाटकीय कहानी के बीच के किसी तीव्रतर क्षण से करना उचित है अर्थात् रूपक का प्रारम्भ उसके संघर्ष अथवा समस्या के मध्य से होना वांछनीय है। कथा का ऐसा प्रारम्भ किया जा सकता है जिसे सुनकर श्रोतागण यह जानने को उत्सुक हो जायें कि लेखक किसके विषय में कह रहा है क्या कह रहा है और क्या कहने जा रहा है। आपका विषय-प्रवेश सुननेवालों का ध्यान बरबस अपनी ओर खींच ले तथा उन्हें सुनने को बाध्य ही करदे। मैंने एक रेडियो रूपक कुणाल लिखा है। उसके प्रारम्भ में ऐतिहासिक क्रम से घटनाएं प्रस्तुत न करके मने उसका प्रारम्भ उस घटना से किया है जिसमें विमाता द्वारा संचालित राजाज्ञा से कुणाल की आँखें निकालने का उपक्रम किया जा रहा है। परिजन विरोध कर रह हैं और युवराज कुणाल राजाज्ञा का पालन करने में दृढ़ प्रतिज्ञ है।

नाटक का प्रारम्भ कथा के बीच के किसी तीव्रक्षण से करने के पश्चात् लेखक पिछली घटनाओं का हवाला दे सकता है और तब फिर नाटक की कथा अपने चरमोत्कर्ष (क्लाइमक्स) की ओर अग्रसर हो जाती है। इस कार्य को धीमता से सम्पन्न करके श्रोताओं की रुचि को जागृत और स्थिर रखा जा सकता है।

नाटक के प्रारम्भ के पश्चात् तो कथा-प्रवाह अथवा वस्तु की गति तीव्रतर एवं दृढ़तर होती जाती है। संघर्ष वाले नाटक में दो विरोधी शक्तियों में आक्रमण और प्रत्याक्रमण होते हैं और कथा के चरम-सीमा तक पात्रों के भावों और जीवन में इतना तनाव उत्पन्न होता है कि उसे सहन करना कठिन हो जाता है। नाटक के चरमोत्कर्ष पर पहुँच कर संघर्ष

वाले नाटक की कहानी का अवसान होजाना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य ही है। ऐसे एकांकी नाटकों का विधान ही सकता है जिसमें कोई स्पष्ट चरमोत्कर्ष नहीं हो। ऐसे नाटकों का प्रयोजन किसी प्रभाव को उत्पन्न करना ही होता है। ऐसी रचना का अन्त उसी समय हो जाता है जब लेखक श्रोताओं के मन में ईप्सित प्रभाव उत्पन्न कर देता है।

रेडियो-रूपक का समय

श्री सेठ गोविन्द दास के शब्दों में "एकांकी नाटक छोटा ही हो यह जरूरी नहीं है वे बड़े भी हो सकते हैं।" इस प्रकार रंगमंच के लिए लिखित रूपक के कलेवर के लिए कोई सीमा निश्चित नहीं है। परन्तु रेडियो-रूपक के विस्तार के लिए यह बात पूर्ण रूपेण सत्य नहीं। अनुभव और प्रयोग के पश्चात् रेडियो-रूपक लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रेडियो-रूपक का कलेवर १५ मिनिट से ७५ मिनिट तक हो सकता है। १५ और ७५ दो ही मति के द्योतक हैं। साधारणतया आध से पौन घंटे तक में प्रसारित हो सकने वाले रूपक श्रोताओं के ध्यान को रचना की ओर आकर्षित और स्थिर रखने में अधिक समर्थ हो सकते हैं। यों फिर उत्तम रचना अस्सी मिनिट की भी स्वीकार की जा सकती है। परन्तु प्रायः इस प्रकार के आत्यन्तिक प्रयोग से दूर ही रहना चाहिये।

एक मिनिट में कितने शब्द प्रसारित होते हैं? कितने पृष्ठ की रचना में कितने मिनिट का समय लगेगा यह जानने को साधारणतया लेखक एक मिनिट के १५ शब्द के हिसाब से अपने नाटक के समय का पता लगा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि एकांकी नाटक के कथानक और रेडियो-रूपक के कथानक में कोई मौलिक भेद न होते हुये भी उनकी रचना के

नियम भिन्न हैं। रेडियो-रूपक सही माने में दृश्य-काव्य नहीं है। श्रोताओं की कल्पना के धरातल पर वह श्रव्य-काव्य बन सका है। वह दृश्य-काव्य और श्रव्य-काव्य के बीच की वस्तु है। विषय-विस्तार का संकोच समय की आवश्यकता, क्रिया का समावेश और विषय-प्रतिपादन के नियमों में रेडियो-रूपक की अपनी विशेषताएं हैं। आरम्भ उत्थान और अन्त के साथ वातावरण को भी इसमें महत्व का स्थान है।

रेडियो रूपक यों लिखते हैं

रेडियो-रूपक को हम कान के द्वारा ही सुनते हैं। रंगमंच के रूपक के समान उसमें दृश्यों की सजावट, पात्रों की वेश-भूषा और उनके हावभाव को हम आँख से नहीं देखते हैं। अपनी रचना में इन अभावों की पूर्ति करने के लिए लेखक अनेक साधनों और सिद्धान्तों का उपयोग करता है। इनके समुचित उपयोग से रेडियो-रूपक सजीव और सरस बन जाता है। रेडियो-रूपक के ये साधन और सिद्धान्त अति सरल हैं। घर बैठे आप इनका प्रयोग करना सीख सकते हैं। दिल्ली, बम्बई, लखनऊ, लाहौर, लन्दन आप किसी भी रेडियो स्टेशन से प्रसारित होने वाले रूपक अथवा फीचर को ध्यान से सुनिये और देखिये कि लेखक रेडियो-रूपक के अभावों को पूरा करने में भिन्न भिन्न साधनों और सिद्धान्तों का प्रयोग करते हैं। इस विचार से आप विभिन्न रेडियो स्टेशनों से अनेक रूपक सुनिये। फिर आप इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि रंगमंच के रूपकों की तुलना में रेडियो-रूपक के अभावों की पूर्ति करने के लिए लेखक भाषा सम्वाद ध्वनि-प्रभाव संगीत और प्रसारक आदि का उपयोग करते हैं। इन साधनों के प्रयोग से श्रोताओं के मानस-पटल पर रेडियो-रूपक के एक के बाद दूसरे दृश्य अंकित होते जाते हैं। वे अपने कल्पना-लोक में रूपक की कहानी को देखने में सफल होते हैं।

सरल और स्पष्ट भाषा

रेडियो श्रोता नाटक के सम्वाद को एक ही बार सुन सकते हैं। जब एक बार सुन कर भी उसका अर्थ समझ में नहीं आने पर श्रोताओं की रुचि कम हो सकती है, ध्यान टूट सकता है और वे रूपक को सुनना बिलकुल बन्द कर सकते हैं। यदि कहीं रूपक से ध्यान-

भ्रष्ट करने वाले अनेक आकर्षण आलापों के चारों ओर उपस्थित होते हैं। ध्यान-भंग होने की स्थिति से उन्हें बचाने के लिए रेडियो-रूपक के प्रत्येक सम्वाद का अर्थ श्रोताओं को स्पष्ट होना चाहिये। रूपक की भाषा सरल स्पष्ट और प्रांजल होनी अति आवश्यक है। किसी भी दशा में विचारों को दुरूह और भाषा को क्लिष्ट न बनाने में ही बुद्धिमानी है। महात्मा तुलसीदास ने भी "सरल कवित कीरति विमल" की ही बात प्रकट की है।

रेडियो-रूपक का प्रत्येक वाक्य चित्ताकर्षक और प्रभावोत्पादक होना आवश्यक है। उसमें श्रोताओं को आह्लादित करने की शक्ति होती है। उसमें निरुद्देश्य शब्दाविश्लेषण और व्यर्थ के दार्शनिक विचारों का बहिष्कार किया जाता है। उसकी प्रत्येक ध्वनि और संकेत सोद्देश्य होते हैं। एक पात्र अपने कुत्ते के काले रंग की ओर संकेत करता है। परन्तु कुत्ते के काले रंग की ओर इतने वाला संकेत उसी समय आवश्यक माना जायगा जब वह काला रंग रूपक के कथा-विकास अथवा चरित्र-चित्रण के लिए कुछ महत्व रखता हो यथा काले रंग के कुत्ते को देख कर एक अपराधी पात्र को दौरे आने लगते हों क्योंकि उसने अपनी कुरूप पत्नी की हत्या करके काले रंग के कपड़े में ही उसे दफनाया था। यहां कुत्ते का काला रंग पात्र के जीवन को बदल देने की क्षमता रखता है उसके गुप्त अपराध को प्रकट कर सकता है।

रेडियो-रूपक एक निश्चित समय में समाप्त किया जाता है। अतएव लेखक की भाषा में न तो शब्दाडम्बर का स्थान है और न प्रयोजनहीन

विचारों और भावों को भाषा के प्रयोग में मितव्ययता से कार्य करना लेखक के लिए अनिवार्य है।

रेडियो-रूपक में ऐसे वाक्यों और शब्दों का प्रयोग भी वर्जित है जिन्हें बोलने में कलाकारों को कठिनाई होती है।

साधारण से साधारण वाक्य में सुधार करके लेखक उसे सप्राण और सरल बना सकता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि लेखक रूपक की प्रत्येक पंक्ति को रमणीय आकर्षक और प्रभावोत्पादक बनाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे। इसके लिए वह अपने रूपक में उत्सुकता हास्य व्यंग-विनोद वाग्वैदग्ध्य और एक से अधिक भाव-भरे स्थलों का समावेश कर सकता है।

संवादों में सुझाव

रेडियो-रूपक में दृश्यों की सजावट पात्रों की वेश-भूषा और उनके हावभाव और शारीरिक क्रियाओं का दिग्दर्शन कराने के लिए अनेक साधनों और सिद्धान्तों का प्रयोग किया जाता है। पात्र के चारों ओर क्या क्या वस्तुएं पड़ी हुई हैं वह स्थान कैसा है वहां कौन कौन से लोग खड़े हुए हैं वहां की प्राकृतिक छटा कैसी है क्या पात्रों की वेश-भूषा सुन्दर है अथवा वे साधारण व्यक्तियों से वस्त्र पहिने हुये हैं और वे कौन कौन सी और कैसी मानसिक और शारीरिक चेष्टाएं कर रहे हैं ऐसी ही अनेक बातों की जानकारी दर्शकों को रंगमंच के रूपक में सरलता से कराई जा सकती है। रंगशाला में बैठे हुए दर्शक इन सभी बातों को रंगमंच पर अपनी आंखों से देखकर उनका *निकटतम* अनुभव करते हैं। परन्तु रेडियो में इन सभी बातों का ज्ञान कान के द्वारा ही प्रदान किया जाता है। इस उद्देश्य को पूरा करने में सम्वाद से बड़ी सहायता प्राप्त की जाती है।

सम्वाद के अनेक प्रयोजन

पात्रों के सम्भाषण के द्वारा उनकी परिस्थिति वेश-भूषा नाम और हावभाव आदि का बोध कराने में लेखक सावधानी से काम करता है। सम्वादों के रूप में इनका वर्णन स्पष्ट आकर्षक और रोचक प्रतीत होना चाहिए। ऐसा प्रतीत न हो कि यह वर्णन अस्वाभाविक लगे अथवा श्रोता यह अनुभव करे कि लेखक बिना प्रयोजन ही उनका वर्णन कर रहा है। इसके लिए लेखक इस वर्णन का सम्बन्ध नाटक के किसी प्रसंग से कर सकता है। इन तथ्यों का वर्णन ठूसा हुआ प्रतीत न हो। वह नाटक के कथा-विकास के आवश्यक अंग के रूप में प्रकट होता है। इस विषय में लेखक अपने से यह प्रश्न पूछ सकता है "क्या यह वर्णन मेरे नाटक के लिए आवश्यक है? क्या इसके बिना नाटक के कथा-विकास में कठिनाई होती है? इन प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर प्राप्त होने पर सम्वाद के द्वारा लेखक पात्रों की वेश-भूषा हावभाव और दृश्यों की सजावट का बोध श्रोताओं को करा सकता है।

एक उपाय और है। एक ही संवाद में इन बातों का संपूर्ण वर्णन न करना ही उचित है। लेखक भिन्न भिन्न संवादों में किसी पात्र की वेश भूषा अथवा स्थिति को प्रकट कर सकता है। एक स्थान पर उसका नाम ले सकता है। पात्रों का नाम तथा परस्पर संबंध प्रकट करना भी एक आवश्यक कार्य है।

दूसरे संवाद में उनके विषय में अन्य आवश्यक बातें बता सकता है और इसी प्रकार आगे के संवादों में अन्य बातें अभिव्यक्त कर सकता है। संक्षेप में संवाद के द्वारा पात्रों की परिस्थिति वेश-भूषा और हावभाव का वर्णन स्वाभाविक रुचिकर और अधिक लंबा न होना अत्यन्त अपेक्षित है। जो कार्य रंगमंच के नाटक में पर्दों से लिया जाता है उसी कार्य को रेडियो-रूपक में संवादों से भी लिया जाता है।

संवाद के द्वारा नाटक के दृश्य पात्रों की गति चेष्टाओं और वेश-भूषा आदि के वर्णन की विधि का पूर्ण ज्ञान करने के लिए उन लेखकों के रेडियो रूपकों को सुनना चाहिये जो सफल नाटककार माने जाते हैं। उनके इस कार्य का विश्लेषण और आलोचना करनी आवश्यक है। उनके सफल प्रयोगों को लेखक अपनी डायरी में लिख भी सकता है। किस प्रकार संवाद के द्वारा पात्रों की वेश-भूषा कार्य-कलाप-अथवा दृश्य का वर्णन किया जा सकता है इसकी जानकारी लेखक रेडियो-रूपक सुन कर आसानी से कर सकता है।

ध्वनि-प्रभाव

पात्रों की परिस्थिति दृश्य वातावरण और उनकी क्रिया को प्रकट करने के लिए ध्वनि प्रभाव (साउण्ड इफेक्ट्स) का उपयोग भी किया जाता है। ध्वनि-प्रभाव एक यांत्रिक साधन (मिकेनिकल डिवाइस) है। इस यांत्रिक साधन में एक विशेष प्रकार की ध्वनि के द्वारा श्रोताओं को किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा क्रिया का बोध कराया जाता है। एक टोस में कंकड़ डाल कर उसे सुड़काने से पानी की लहरों की सी ध्वनि उत्पन्न होती है। इसी प्रकार एक नाद में पानी भर कर एक लकड़ी के टुकड़े को जल में इस प्रकार से चलाया जा सकता है कि रेडियो पर ऐसी ध्वनि हो कि पानी में नाव चली जा रही है। इसी प्रकार अन्य अनेक प्रकार की ध्वनियों को सुन कर श्रोता किसी स्थिति अथवा दृश्य की कल्पना कर लेता है। लहरों की आवाज़ सुन कर वह सरिता अथवा सागर तट की कल्पना करता है। इसी समय यदि दो पात्रों के बीच होने वाले संवाद को भी प्रस्तुत कर दिया जाता है तो श्रोतागण के कल्पना-लोक में एक स्थिति का पूर्ण चित्र उपस्थित हो जाता है जैसे दो व्यक्ति सागर तट पर वार्तालाप अथवा नौका विहार कर रहे हों। उनका संभाषण संपूर्ण स्थिति को स्पष्ट करने में सहायक होते हैं। इस कार्य में एक से अधिक स्टूडियो का प्रयोग

किया जाता है। एक स्टूडियो अथवा कमरे में पात्रों के बीच कथोपकथन चलता है और दूसरे स्टूडियो से किन्हीं वस्तुओं के उपयोग से उन ध्वनियों को उत्पन्न किया जाता है जो पात्रों की स्थिति स्थान क्रिया अथवा वाता वरण आदि को प्रकट करती हैं। एक उदाहरण लीजिये। एक स्टूडियो में नायक और नायिका में प्रेम की बातचीत हो रही है। इसी समय दूसरे स्टूडियो में माइक्रोफोन के समीप पानी की नांद में लकड़ी के टुकड़े से जल को इस प्रकार से हिलाया जा रहा है कि रेडियो पर उसकी ध्वनि नाव खेने के समान सुनाई दे। पात्रों के संवाद और इस ध्वनि प्रभाव को श्रोताओं को एक साथ प्रस्तुत किया जाता है। फलतः उनके मानस-पटल पर एक चित्र सा अंकित हो जाता है वे अनुभव करते हैं जैसे नायक और नायिका नाव खेते हुए चले जा रहे हैं। श्रोताओं की कल्पना इस दृश्य को और भी अधिक स्पष्ट कर देती है। कथोपकथन के द्वारा बाकी बातें भी अभिव्यक्त की जा सकती हैं, यथा धीमी लहरों का थिरकना, पवन का चलना आदि।

जिन साधनों से विभिन्न वस्तुओं और क्रियाओं की ध्वनियों का बोध श्रोताओं को कराया जाता है उन्हें स्वन-यंत्र (स्पोट एफेक्ट्स) कहते हैं।

प्रभाव रेकार्ड

स्वन-यंत्र के द्वारा ध्वनियों को प्रस्तुत न करके ध्वनि-प्रभाव-रेकार्ड का भी उपयोग किया जाता है। रेलगाड़ी के चलने वर्षा के बरसने वाली तूफान टेलीफोन की घंटी हर्षमय कोलाहल, युद्ध ध्वनियां और चिड़ियों की चहचहाहट घोड़ों की टाप आदि ध्वनियों के रेकार्ड बने रहते हैं। इन रेकार्डों को ध्वनि प्रभाव रेकार्ड (साउण्ड इफेक्ट्स रेकार्ड्स) के नाम से पुकारा जाता है। हजारों वस्तुओं व्यक्तियों और क्रियाओं को ध्वनि-रेकार्ड के रूप में संचित कर लिया जाता है। फिर स्पष्ट

में पात्रों की किसी स्थिति अथवा क्रिया का बोध कराने में इन रेकार्डों का उचित समय पर उपयोग कर लिया जाता है।

सावधानी का काय

ध्वनि-प्रभाव चाहे वह रेकार्ड के द्वारा हो अथवा अन्य उपायों द्वारा उसका उपयोग लेखक को सावधानी से करना होता है। यह न हो कि किसी ध्वनि-प्रभाव के उपयोग के लिए कहानी में प्रयोजनहीन दृश्यों का समावेश किया जाय। ध्वनि-प्रभाव यदि नाटक के कथा के विकास में सहायक न हो तो उसका उपयोग नहीं करना ही उचित है। उसका कहानी के लिए अनिवार्य होना आवश्यक है। रूपक के किसी स्थल पर ध्वनि प्रभाव का उपयोग स्वाभाविक ढंग से स्वत ही हो जाय तो उत्तम प्रतीत होता है।

सफल लेखक ध्वनि प्रभाव पर निर्भर नहीं रहता। वह बुद्धिमानी से उनका उपयोग करता है। वह ध्वनि-प्रभावों की भरमार नहीं करता। वह उनके उपयोग में मितव्ययिता से कार्य करता है और इसी कारण वे बहुत प्रभावोत्पादक और रोचक लगते हैं। किसी विषय की जानकारी प्रदान करने अथवा किसी दृश्य का चित्र प्रस्तुत करने के लिए उनका उपयोग किया जाता है। यही नहीं जब संवाद के रूप में किसी कार्य अथवा घटना का वर्णन रोचक प्रतीत नहीं होता है तब ध्वनि-प्रभाव के उपयोग से उस कार्य अथवा घटना को प्रकट किया जा सकता है। आंधी और वर्षा का संवाद के रूप में वर्णन न करके ध्वनि-प्रभाव के रेकार्ड से उनका बोध प्रभावोत्पादक ढंग से श्रोताओं को कराया जा सकता है। यथा —

कल्पना —बौद्ध धर्म का दृष्टिकोण मानवीय है।
स्वामी अब तो आगे नहीं चला जा सकेगा। काले काले बादल उमड़ घुमड़ कर उठ रहे हैं। वर्षा होने लगी है। तूफान आने वाला है।

प्रभावों का उपयोग करना ही हो तो एक के बाद दूसरे को प्रथवा एक समय दो ध्वनि प्रभावों को प्रस्तुत किया जा सकता है ।

ध्वनि-प्रभाव के विषय में यदि लेखक को संदेह हो तो उनका उपयोग न करना ही ठीक है । ऐसा न हो कि प्राप एक ध्वनि के द्वारा प्रकट तो कुछ करना चाहते हैं और श्रोता उस ध्वनि को सुनकर किसी और ही क्रिया वस्तु अथवा दृश्य का अनुमान लगायें । संदिग्ध ध्वनि-प्रभाव के उपयोग से बचना आवश्यक है । ध्वनि-प्रभाव स्पष्ट होना चाहिये । ऐसे ध्वनि-प्रभाव का भी बहिष्कार किया जाय जो क्रिया की गति को रोक देता हो जो पात्रों की शारीरिक गति चेष्टाओं में बाधा उपस्थित करता हो ।

उन्हीं ध्वनि-प्रभावों का प्रयोग करना चाहिये जिसकी स्पष्टता प्रभावोत्पादकता और आवश्यकता से लेखक पूर्णतया परिचित हो । जहाँ लेखक का ज्ञान पर्याप्त न हो वहाँ ध्वनि-प्रभाव के प्रयोग के विषयमें उसे रूपक के प्रस्तुतकर्ता के समक्ष ऊंचे ऊंचे आदर्श नहीं रखना ही युक्ति-संगत है । ध्वनि प्रभावों का उपयोग और प्रबन्ध करना प्रस्तुतकर्ता का ही कार्य है । लेखक तो सुझाव के रूप में ध्वनि-प्रभावों के उपयोग की ओर संकेत मात्र करता है । अतएव यदि लेखक के सुझाव अनुपयोगी अव्यावहारिक अथवा अस्पष्ट होंगे तो इससे लेखक के अज्ञान का ही प्रदर्शन होगा ।

संगीत का महत्त्व

वाद्ययंत्रों के उपयोग से भी ध्वनिप्रभाव उत्पन्न किये जाते हैं । उनके द्वारा पात्रों की मानसिक स्थिति और उनकी शारीरिक गति चेष्टाओं को प्रकट किया जा सकता है । वाद्य-यंत्र के द्वारा पात्र के चलन अथवा नर्तन की क्रिया का बोध श्रोताओं को कराया जाता है । यह क्रिया प्यानों के स्वरों ... प्रयोग से प्रकट की जा सकती है । सिनेमा में पात्र के चलने अथवा भागने पर पृष्टभूमि में इसी प्रकार की वाद्य-ध्वनि की जाती है । इसी प्रकार किसी दुखपमेदी बात को सुनकर पात्र के मस्तिष्क

में जो भूकम्प सा उत्पन्न होता है उसे अभिव्यक्त करने के लिए प्यानो के अनेक स्वरों को दोनों हाथों से दो तीन बार एक साथ बजाया जाता है। इस गर्जना से श्रोताओं को पात्र के मस्तिष्क पर होने वाले आघात का बोध हो जाता है। सरोद और क्लारोनेट के द्वारा पात्रों के चलने भागने अथवा चलते-चलते रुक जाने की क्रिया को प्रकट किया जा सकता है। लेखक के लिए संगीत के ऐसे प्रयोगों की जानकारी प्राप्त करते रहना आवश्यक है।

संगीत के द्वारा वातावरण का भी निर्माण किया जाता है। एक दृश्य के प्रारम्भ के वाद्य-संगीत को सुनकर यह बताया जा सकता है कि इस दृश्य में सुखद दुखद अथवा हर्षमयी किसी घटना का वर्णन होगा। संगीत रूपक की कथा के अनुकूल होता है। संगीत का प्रयोग दृश्य के देश-काल के अनुसार भी किया जाता है। दृश्य में प्रभात के समय की घटना हो तो उसके प्रारम्भ में भैरव-ठाट का कोई राग प्रस्तुत कर दिया जाता है। सन्ध्या के समय के दृश्य के प्रारम्भ में वाद्ययंत्र पर यमन-ठाट की राग बजायी जाती है। इसके साथ साथ वाद्य-संगीत के प्रयोग से व्यक्ति अथवा समूह की क्रियाओं को भी प्रकट किया जा सकता है। सैन्य प्रस्थान (मार्च पास्ट) की धुन के द्वारा रणक्षेत्र अथवा सैनिक समारोह में सेना के चलने का बोध होता है। इस संगीत को सुनकर श्रोताओं की कल्पना क्रियाशील हो जाती है। वे उस रणक्षेत्र अथवा सैनिक समारोह के दृश्य का चित्र मन में बना लेते हैं। श्रोतागण संगीत की ध्वनि के रूप में किसी क्रिया अथवा दृश्य का संकेत मात्र मिलते ही मन में समस्त क्रिया अथवा दृश्य का संपूर्ण चित्र बना लेते हैं। सैन्य प्रस्थान (मार्च पास्ट) की धुन बजी बिगुल का नाद हुआ और कुछ ही देर में कप्तान सैनिकों को सम्बोधित करके बोलने लगा। इतना सुनकर श्रोतागण सैनिकों की पंक्तियों, कप्तान के मंच पर खड़ा होना और झंडे के फहरने आदि की कल्पना करके एक सम्पूर्ण चित्र का दर्शन करते हैं। रेडियो स्टेशन के स्टूडियो में ऐसा कोई सैनिक समारोह नहीं है परन्तु संगीत और संवाद में

संगीत से श्रोता के द्वारा श्रोता को यह स्थिति वास्तविक स्थिति के समान प्रतीत होती है। इसी प्रकार शहनाई की ध्वनि से विवाह का बोध कराया जा सकता है। जहाँ रंगमंच के रूपक में दुखान्त दृश्य को व्यक्त करने के लिए प्रकाश को मन्द कर दिया जाता है वहाँ उसी दृश्य को रेडियो-रूपक में संगीत के द्वारा प्रकट किया जाता है। यह संगीत उस दृश्य के प्रभाव को तीव्र कर देता है। एक पात्र ने विषपान कर लिया है। उसके प्रेमी या प्रेमिका को एक कठोर आघात पहुँचा है। दुःखातिरेक से वह रुदन कर रहा है। इस स्थिति के प्रभाव को तीव्रतर करने के लिए वायलिन अथवा सरोद पर करुणामयी स्वर लहरी प्रवाहित करती जाती है। इस स्थिति में दुखित पात्र के मुँह से जो सम्वाद बोला जाता है उसके प्रभाव को बढ़ाने में संगीत की यह ध्वनि सहायक होती है। दुःख के अतिरिक्त अन्य भावों के प्रभाव को तीव्रतर करने के लिए अनुकूल राग-रागिनी का उपयोग किया जाता है।

नाटक के चरमोत्कर्ष के पूर्व की स्थिति के अनुकूल संगीत का प्रयोग किया जाता है। यह संगीत चरमोत्कर्ष (क्लाइमैक्स) की भविष्यवाणी ही नहीं करता अपितु उसके प्रभाव को बढ़ाता भी है। यह नाटक के कथा-विकास को बल भी प्रदान करता है, श्रोताओं को घटनाओं का क्रम कुछ तीव्र गति से नाटक के अन्त की ओर अग्रसर होता दीख पड़ता है।

संगीत के उपयोग का जहाँ एक ओर इतना महत्त्व है वहाँ दूसरी ओर उसके उपयोग में अति से बचना भी होता है। लेखक को आवश्यकता होने पर ही संगीत का प्रयोग करना चाहिये। किसी संगीत-ध्वनि का उपयोग किया जाय अथवा नहीं इसका पता लगाने के लिए लेखक अपने से यह प्रश्न पूछ सकता है 'क्या इस संगीत ध्वनि के अभाव में मेरे रूपक का कथा-विकास मन्द अथवा नीरस हो जायगा? क्या यह इस रूपक के लिए आवश्यक है?" इन प्रश्नों के साथ एक बात तो निश्चित है ही। किसी भी दशा में संगीत का अतिशय उपयोग वर्जित है। संगीत का समुचित उपयोग ही रूपक का सौंदर्य और सफलता है।

गीतों का प्रयोग

वाद्य-संगीत के सिवाय रूपक में गीतों का प्रयोग भी किया जा सकता है। उसमें रूपक की कथा के आवश्यक स्थलों पर उचित गीतों का समावेश किया जाता है। संगीत-रूपक में तो गीतों का बड़ा महत्व है। साधारण रूपक में भी आवश्यकता होने पर रूपक के आरम्भ अथवा अन्त में एक आध गीत रखा जा सकता है। रूपक में गीतों का समावेश करते समय इस बात का ध्यान रखना होगा कि उसकी उपस्थिति कथा के विकास का अवरोध तो नहीं कर रही है। कारण कि प्राय: स्पष्ट प्रयोजनहीन गीत नाटक के प्रभाव को नष्ट ही करते हैं। अतएव नितान्त आवश्यक न हो तो रूपक में गीतों का समावेश न करना ही समझदारी है। हां, विशेष परिस्थिति में कथा विकास चरित्र-चित्रण आदि के प्रयोजन से गीतों का प्रयास किया जा सकता है।

प्रसारक का उपयोग

रेडियो-रूपक की कथा की प्रारम्भिक भूमिका तैयार करने के लिए कभी कभी कथाकार का उपयोग किया जाता है। कथाकार का रेडियो-रूपक में 'प्रसारक' कहते हैं। साधारण नाटक के आरम्भ और अन्त में प्रसारक का प्रयोग किया जाता है। प्रसारक के शब्दों से नाटकीय कथा आरम्भ के सम्वाद और पात्रों के लिए भूमिका बन जाती है। जब नाटक के कथा-प्रवाह और क्रिया का आरम्भ हो जाता है तब प्रसारक का उपयोग न करना ही उचित है। कारण यह है कि ऐसा करने से कथा-विकास और पात्रों की क्रिया में बाधा उपस्थित होती है। फिर यदि प्रसारक का कार्य सम्वाद के द्वारा सम्पन्न हो सकता हो तो प्रसारक के उपयोग को तिलांजलि दे देनी चाहिये। ऐसा करने से नाटक के कथा-प्रवाह में अवरोध के उत्पन्न होने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होगा।

प्रसारक का उपस्थान कृत्रिम और पुराना सा प्रतीत होता है। आवश्यक परिस्थिति में प्रयोग अपेक्षित भी है यथा उपन्यास और बड़े नाटक के रेडियो-रूपान्तर में।

प्रसारक का समावेश अनाटकीय है। किन्तु इसका प्रयोग प्रश्न और उत्तर, समर्थन और विरोध प्रमुख और सहायक के रूप में दो भिन्न आवाजों के द्वारा भी हो सकता है। इस रीति में एक आवाज के निरंतर प्रयोग की एकरूपता शिथिलता और निर्जीवता नहीं रहती। दो आवाजों का प्रयोग नाटक सा प्रतीत भी होता है।

प्रसारक की भाषा के सम्बन्ध में लेखक को सतर्क रहना पड़ता है। उसकी भाषा प्रभावमय और चित्रात्मक होनी है। उसमें इतने लम्बे लम्बे वाक्य न हों कि कलाकार उन्हें बोलते समय श्वास लेने में कठिनाई का अनुभव करें।

दृश्य बदलना

रेडियो-रूपक में दृश्य बदलने होते हैं। प्रत्येक दृश्य रेडियो-रूपक की कथा को आगे की ओर ले जाता है। वह कहानी की गति को बन्द नहीं करता। यद्यपि रेडियो-रूपक में रंगमंच के पट के समान यवनिका नहीं गिराई जाती है तथापि उसमें दृश्यों का बदलना अति सरल होता है। क्षणभर में ही एक दृश्य के बाद दूसरे दृश्य को आरम्भ किया जा सकता है।

दृश्य बदलने के लिए रेडियो रूपक में विभिन्न साधनों का प्रयोग किया जाता है। साधारणतया दो दृश्यों के बीच में वाद्य-संगीत का प्रयोग किया जाता है जिसे संगीतात्मक मध्यान्तिका (म्यूजिकल इंटरल्यूड) कहते हैं। इस संगीतात्मक मध्यान्तिका के काल को दीर्घतर करने पर रूपक का प्रवाह मन्द हो जाता है। मध्यान्तिका के समय को सीमित ही रखना आवश्यक है। यह संगीत धीरे धीरे आरम्भ होता है और धीरे धीरे ही बन्द किया

निश्चित चरित्र-चित्रण है और उसमें उचित रूप से नाटक लिखने के साधनों और सिद्धान्तों का निर्वाह किया गया है तो लेखक के लिए सफलता का द्वार खुल जायगा। परिश्रम करनेवाला और नियमित रूप से रेडियो सुननेवाला चतुर लेखक रेडियो-रूपक के निर्माण में कभी निराश नहीं होगा। परन्तु समस्त ध्वनि-प्रभाव संगीत तथा प्रसारक का उपयोग करते समय उसे यह न भूल जाना चाहिये कि 'अति सर्वत्र वर्जयेत।'

लेखक, प्रस्तुतकर्ता और कथाकार

अपने रूपक को लिपिबद्ध करने और रेडियो विभाग को भेजने के पहिले कुछ बातों का ध्यान रखने से रचना की स्वीकृति का मार्ग सरल हो जाता है। तब फिर नाट्यकार का परिश्रम निष्फल नहीं जाता निराशा नहीं होती और वह अपने कार्य में दक्ष हो जाता है।

रूप रेखा भेजें

लेखक नाटक की कथा की रूपरेखा और रूपक के प्रारम्भ के एक दो पृष्ठों को लिखकर रेडियो-विभाग को स्वीकृति के लिए भेज सकता है। यदि नाटक की कथा प्रभावपूर्ण होगी तो वहां से उत्साहवर्द्धक और सन्तोषप्रद उत्तर प्राप्त होगा। वहां से उस रूपक को पूरा लिखकर भेजने की मांग भी की जायगी। क्रिया-प्रधान और संघर्ष प्रधान रूपक के लिए ऐसा पत्र-व्यवहार रेडियो अधिकारियों में प्रारम्भिक रुचि को जागृत कर सकता है। रेडियो-विभाग उस रचना के स्वागत के लिए तैयार हो जाता है। परन्तु जब रूपक की कथा आकर्षक और प्रभावशाली न हो और उसकी सफलता लिखने के ढंग और उभार पर अवलम्बित हो तो इस प्रकार की रूपरेखा को न भेजना ही लाभदायक होगा। नवीन लेखकों के लिए मेरा तो यह अनुभव और अनुमान है कि उन्हें रचना को अपने पूर्ण लिखित रूप में ही भेजना उचित है। हां एक बार रेडियो-जगत में अपना स्थान बना लेने के पश्चात् लेखक उन नाटकों की रूपरेखा और प्रारम्भिक दृश्य भेज सकता है जिनमें तीव्र संघर्ष क्रिया का प्राधान्य और चरमोत्कर्ष प्रभावपूर्ण हो।

पृष्ठान्त नहीं

रूपक की कथा की रूपरेखा भेजते समय एक और बात का ध्यान रखना चाहिये। रूपक का कथात्मक प्रतिपम दुर्गम न हों।

रूपक में ऐसे दृश्यों का समावेश नहीं होता है जिनमें मृत्यु, मरघट और रौद्र भाव विद्यमान हों। लेखक सोच सकता है कि श्रोताओं पर इन भावों का अच्छा प्रभाव नहीं होता। नरमुण्डों का समूह रक्त-सिक्त धरती और मवकटी मग्न देहें श्रोताओं को रुचि से मेल नहीं खाती हैं। भारतीय नाट्यशास्त्र में तो ऐसे दृश्यों के वर्णन को त्याज्य ठहराया है। रेडियो रूपक का अंत दुखान्त हो सकता है परन्तु श्रोताओं के लिए वह वृत्तान्त न हो।

प्रस्तुतकर्ता क्या क्या करता है?

रेडियो–रूपक की स्वीकृति और प्रसारण में प्रस्तुतकर्ता एक मुख्य साझीदार है। वह रूपक को श्रोताओं को प्रस्तुत करता है। वह अभिनय, ध्वनि–प्रवाह, संगीत तथा रूपक से संबंधित अन्यान्य कार्यों का निर्देशन करता है। वह रूपक में लेखक से अनेक आवश्यकताओं की मांग करता है। इसलिए लेखक प्रस्तुतकर्ता की दृष्टि से भी अपनी रचना पर विचार करता है। प्रस्तुतकर्ता के हाथ में पड़कर लेखक की रचना में अनेक परिवर्तन हो सकते हैं। रचना में परिवर्तन एवं परिवर्द्धन करने का वह अधिकारी भी है। रूपक में किसी बात के समावेश के विषय में उसका विचार अंतिम निर्णय है।

लेखक प्रस्तुतकर्ता के इन कार्यों में सहायक की भांति अपना परामर्श देता है। इसके लिए उसे प्रस्तुतकर्ता के कार्य से अवगत हो जाना उचित है। प्रस्तुतकर्ता का कार्य विशेषज्ञों का कार्य है। उस कार्य को प्रत्येक व्यक्ति को नहीं सौंपा जा सकता नहीं सौंपा जाता है। उसके कार्य में लेखक हस्तक्षेप नहीं कर सकता लेखक अपनी ओर से किसी विषय पर सुझाव दे सकता है जिसे मानना अथवा न मानना प्रस्तुतकर्ता के निर्णय पर निर्भर है।

संवाद का निर्देशन

रचना लिखते समय संवाद-संकेतों और ध्वनि-प्रभावों के उपयोग के संकेतों का स्पष्ट रूप से प्रकट करना चाहिये। अभिनय करनेवाले कलाकारों को रूपक के प्रत्येक संवाद को कोमलता, कठोरता, आश्चर्य अथवा अन्य भावों के साथ बोलना होता है। लेखक इस बात से पूर्णतया परिचित होता है कि कौन सा संवाद किस भाव से अमुक परिस्थिति में बोला जा रहा है। प्रत्येक संवाद को जिस भाव से बोलना हो उसका संकेत कर देना आवश्यक है। इसके लिए इन संवाद संकेतों और संवादों को एक दूसरे से अलग अलग प्रकट करना होता है। लेखक संवाद बोलने के ढंग से सम्बंधित संकेतों को कोष्टकों में बन्द कर देता है।

ध्वनि-प्रभावों के उपयोग के लिए भी लेखक इस प्रकार के संकेत कर सकता है। जहां ध्वनि-प्रभाव के विषय में लेखक के विचार स्पष्ट न हों वहां पात्रों के आने-जाने, हंसने, रोने, उनके मस्तिष्क में होनेवाली विचारों की उथल-पुथल आदि तथ्यों को सरल और स्पष्ट भाषा में प्रकट करके ही संतोष कर लेना उचित है। किन्तु संवाद के अभिनय, ध्वनि-प्रभाव और संगीत आदि के लिए जो लेखक जितना संक्षिप्त एवं सक्षम निर्देशन दे सकेगा वह रचना उतनी ही अधिक सफल हो सकेगी। प्रस्तुतकर्ता के लिए लेखक के ये संकेत सुझाव के रूप में होते हैं। वह इनमें आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन भी कर सकता है, करता भी है।

प्रस्तुतकर्ता का कार्य अत्यन्त कठिन और जटिल है। सबसे पहिले प्रस्तुतकर्ता नाटक की कृति का पूर्ण अध्ययन करता है। उसकी आवश्यकताओं और अभावों का पता लगाता है। अपने अध्ययन में प्रस्तुतकर्ता प्रत्येक पात्र के व्यक्तित्व और स्वभाव का पता लगा लेता है तब फिर रूपक को प्रसारित करने के लिए कलाकारों का चुनाव किया जाता है। इन पात्रों का अभिनय करने के लिए उचित व्यक्तित्व वाले कलाकारों

का चुनाव करने में बड़ी सतर्कता से कार्य करता है। रेडियो-रूपक में दुःख, दया मोह ईर्ष्या प्रेम सहानुभूति क्रोध तिरस्कार आदि सभी प्रकार के भाव कलाकारों की आवाज के द्वारा उत्पन्न करने होते हैं। यदि पात्रों के हाव भाव मुखमुद्रा और शारीरिक चेष्टाओं के द्वारा इन भावों को व्यक्त किया जाय तो श्रोतागण उन्हें देखने में असमर्थ होंगे। वाणी की तोड़मरोड़ (मोड्यूलेशन) के द्वारा ही इन भावों को व्यक्त करने में कलाकारों की सार्थकता है। रेडियो रूपक में राजा हरिश्चन्द्र का अभिनय करने वाले कलाकार की आंखों में आंसुओं की धारा ही क्यों न प्रवाहित हो जाय परन्तु जब तक वह आंसुओं की पीड़ा उसकी वाणी में प्रकट न होगी तब तक वह अभिनय असफल अभिनय समझा जायगा। कलाकारों की वाणी की उचित तोड़-मरोड़ रेडियो-रूपक के अभिनय का प्राण है। इसलिए प्रस्तुतकर्ता पात्रों का अभिनय करनेवाले कलाकारों का चुनाव करते समय उनकी वाणी की ओर विशेष ध्यान देता है। माइक्रोफोन पर एक सौन्दर्यहीन तरुणी की आवाज बालक अथवा वृद्धा स्त्री की आवाज की भांति सुनायी दे सकती है और श्याम वर्णा प्रौढ़ा की वाणी एक किशोर कुमारी की प्यार लहरी की भांति प्रकट हो सकती है। यहां मुझे रेडियो के एक अनन्य भक्त के जीवन की एक घटना का स्मरण हो आया है। इन महाशय ने एक बार रेडियो स्टेशन से एक नई कलाकर्त्री की आवाज सुनी। उन्हें वह नई आवाज किसी किशोर कुमारी की आवाज सी प्रतीत हुई और वे उनसे भेंट करने रेडियो-स्टेशन पर पहुंचे। सोचा उस तरुण कलाकर्त्री को उसकी वाणी के माधुर्य के लिए बधाई देंगे। जब उन्होंने उस रेडियो कलाकर्त्री को देखा तो उन पर बिजली गिर पड़ा। वह महिला उनकी आशा के विरुद्ध एक प्रौढ़ विवाहिता निकली। एतदर्थ प्रस्तुतकर्ता कलाकारों के चुनाव में उनके रंगरूप और वर्णों में आयु को न देखकर उनकी आवाज का स्वरूप आवाज की आयु, लोच संतुलन और स्पष्टता की ओर ध्यान देता है। अनुभवी प्रस्तुतकर्ता यह जानता है कि दो पुरुष कलाकारों की

अथवा दो स्त्री कलाकारों की वाणी एक दूसरे के समान होती है। इसलिए वह दो महिला पात्रों की भावाओं में असमानता प्रकट करने के लिए कलाकारों के चुनाव में यह सिद्धान्त याद रखता है।

कलाकारों के चुनाव में उनकी वाणी की उत्तमता का ध्यान रखना ही पर्याप्त नहीं प्रस्तुतकर्ता किसी पात्र विशेष के अभिनय के लिए किसी कलाकार का चुनाव करते समय कलाकार के पूर्ण व्यक्तित्व का भी ध्यान रखता है। अनेक लोग गम्भीर वृत्ति के होते हैं। प्राय वे किसी विदूषक का अभिनय नहीं कर सकते। इसी प्रकार हंसमुख व्यक्ति साधारणतया गम्भीर अभिनय सफलतापूर्वक नहीं कर पाते। इस प्रकार के उचित निष्कर्ष पर पहुँचने के पूर्व प्रस्तुतकर्ता अपने कलाकारों के साथ परीक्षण किया करते हैं।

प्रारम्भिक रिहर्सल

नाटक के पात्रों का अभिनय करनेवाले कलाकारों का चुनाव हो जाने के पश्चात् प्रस्तुतकर्ता उन्हें रिहर्सल के लिए आमंत्रित करता है। वह रिहर्सल के लिए स्टूडियो निश्चित कर लेता है। पहली बार जब कलाकार पात्रों का अभिनय करने के लिए बारी बारी से अपने-अपने संवादों का पाठ करते हैं तो उस समय प्रस्तुतकर्ता कलाकारों को किसी प्रकार का निर्देश नहीं देता। चतुर प्रस्तुतकर्ता इस प्रकार रूपक का एक-दो बार रिहर्सल कराता है। इस प्रकार के रिहर्सल से कलाकारों में रूपक के अभिनय के लिए मानसिक पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है और वे उस पात्र के चरित्र से अवगत भी हो जाते हैं जिसका अभिनय उन्हें करना है। वे नाटक को पूरा मैं प्रवाह कर लेते हैं। इस प्रारम्भिक रिहर्सल में प्रस्तुतकर्ता इस बात का पता लगा लेता है कि भिन्न-भिन्न कलाकारों के अभिनय जानने के ढंग में सुधार की आवश्यकता है।

प्रारम्भिक रिहर्सल के पश्चात् प्रस्तुतकर्ता कलाकारों के अभिनय को रोचक और रमणीय बनाने का प्रयत्न करता है। वह कलाकारों के बोलने के ढंग और आवाज में पात्रों के चरित्र और परिस्थितियों के अनुकूल लोच संतुलन तोड़-मरोड़ और वाणी में स्थित भावों पर ध्यान देता है। कलाकारों को प्रत्येक संवाद के अनुकूल ममता श्रद्धा करुणा क्षमा हास्य क्रोध आदि को व्यक्त करने का निर्देश दिया जाता है। अभिनय के इस निर्देशन में प्रस्तुतकर्ता पूर्ण सतर्कता योग्यता और सावधानी से कार्य करता है। विभिन्न मानव स्वभाव और प्रकृति के कलाकारों का सहयोग प्राप्त करने के लिए प्रस्तुतकर्ता में उच्च सामाजिक बुद्धि की आवश्यकता है। उसके लिए पात्रों के उचित अभिनय करने पर प्रशंसा के दो शब्द कहना उनके स्वाभिमान को ध्यान में रखकर अप्रत्यक्ष रूप से अभिनय में सुधारों की ओर संकेत करना और उनको आवाज की तोड़-मरोड़ से स्वयं भाव-प्रदर्शित करके दिखलाना अपेक्षित है। कलाकारों के कभी-कभी उचित प्रकार से अभिनय न कर सकने पर समझदार प्रस्तुतकर्ता अपने मुंह पर घृणा अथवा क्रोध के भाव प्रकट नहीं होने देता है। एक शान्त चित्त हंसमुख और उत्साही प्रस्तुतकर्ता नाटक के कार्य को सरल बना देता है। ऐसे शिष्ट स्वभाव के प्रस्तुतकर्ता को कलाकारों का सहयोग और आदर सदैव मिल जाता है।

अच्छा प्रस्तुतकर्ता ऐसा व्यक्ति हो जिसे कलाकार आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। यदि कलाकार किसी प्रस्तुतकर्ता को अपने से अधिक योग्य अनुभवी और कार्य-कुशल नहीं मानते हैं तो वे प्रस्तुतकर्ता के निर्देशों को संशय की दृष्टि से देखेंगे। प्रायः प्रस्तुतकर्ता अपने उपायों से ऐसे पात्रों को ठीक राह पर ले आते हैं। परन्तु अड़ियल टट्टू के समान उनको कलाकारों के प्रति कुछ कठोर भी बनना पड़ता है।

प्रस्तुतकर्ता अभिनय के अनेक रिहर्सल करता है। वह कलाकारों के शब्दों के उच्चारण और एक-एक वाक्य में आवश्यकता के अनुसार सुधार करता है। वह उन्हें संवाद बोलते समय माइक्रोफोन के समीप आने अथवा दूर हटने का भी निर्देश करता है। वह जोर से अथवा धीरे से बोलने का ढंग बताता है। वह पात्रों को इस बात की ओर भी सजग कर देता है कि उन्हें अपने पार्ट के कागजों का अपने मुंह के सामने नहीं रखना है। अनेक पात्र अभिनय करते समय पांवों पर इधर उधर हटते रहते हैं। प्रस्तुतकर्ता ऐसी निरर्थक शारीरिक चेष्टाओं को रोकने का भी प्रबन्ध करता है। किसी वाक्य के बोलने में वक्ष में वायु को भरने निकालने अथवा स्थिर रखने के नियम भी वह कलाकारों को बताता है। ऐसे ही आवेशों और निर्वेदों के प्रकाश में कलाकारों को अनेक रिहर्सल करवाये जाते हैं और धीरे धीरे कलाकार नाटक की आवश्यकता के अनुरूप अभिनय करने लग जाते हैं। अभिनय अच्छा हो रहा है या नहीं इस विषय में प्रस्तुतकर्ता सजग रहता है और उसमें निरन्तर सुधार करता रहता है।

संगीत विभाग से सम्पर्क

इधर एक ओर प्रस्तुतकर्ता कलाकारों से संवादों का रिहर्सल करवाता है और उधर दूसरी ओर वह रूपक में संगीत के प्रयोग के लिए संगीत-विभाग से बातचीत करता है। रूपक में दो दृश्यों के बीच कैसे संगीत का प्रयोग हो रात्रि के सुनसान वातावरण को प्रकट करने के लिए पृष्ठभूमि में कैसी धुन प्रस्तुत की जाय पात्र की मानसिक उथल-पुथल को प्रकट करने को प्यालों से किस प्रकार की ध्वनि हो प्रस्तुतकर्ता संगीत विभाग से ऐसे ही कतिपय प्रश्नों का निश्चय करता है।

ध्वनि-प्रभाव विशेषज्ञ

कभी कभी किसी घटना आंधी तूफान आदि को प्रकट करने के लिए ध्वनि प्रभावों का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुतकर्ता रूपक

के प्रबन्धक म इस बात के लिए ध्वनि प्रभाव विशेषज्ञो से विचार-विनिमय करता है। प्राकृतिक दृश्य और पात्रो के चारो ओर की स्थिति को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने के लिए विभिन्न ध्वनि-प्रभावों के समुचित उपयोग की संभावनाओ का निश्चय और निर्णय किया जाता है। इस कार्य में इंजीनियर भी प्रस्तुतकर्ता का पूरा पूरा हाथ बटाता है। तब फिर प्रस्तुतकर्ता इस बात का पता लगा लेता है कि आंधी वर्षा तूफान जनसमूह का हर्ष विषाद, दरवाजा खटखटाना पदचाप आदि क्रियाए प्रभाव-रेकार्डों अथवा किन किन अन्य साधनों से प्रदर्शित की जा सकती हैं।

समस्त समन्वय

पात्रों के वाचिक अभिनय संगीत के उपयोग और ध्वनि-प्रभावों के प्रयोग करने के निर्देशों को प्रस्तुतकर्ता अपने पासवाली नाटक की पांडुलिपि में लिख लेता है। तब फिर वह संगीत ध्वनि-प्रभाव और पात्रों का संयोग करने को प्रवृत्त हो जाता है।

प्रस्तुतकर्ता एक स्टूडियो में अभिनय करनेवाले कलाकारों को खड़ा करता है, दूसरे में ध्वनि-प्रभावों को उत्पन्न करने के साधनो को एकत्र करता है और साधारणतया स्वयं उस कमरे में बैठता है जिसे नाटक-नियंत्रण कक्ष (ड्रामा कंट्रोल रूम) कहते हैं और वहां से वह कलाकारों को बोलने चुप रहने और ध्वनि-प्रभाव के प्रयोग करने का संकेत भेजता है। नाटक नियंत्रण-कक्ष में बैठने के पूर्व प्रस्तुतकर्ता पात्रों, वादकों और अन्य संबंधित लोगों को सभी आवश्यक बात समझा देता है। प्रत्येक व्यक्ति प्रस्तुतकर्ता से संकेत पाने पर अपना कार्य आरम्भ कर देता है। एक दृश्य लीजिये। दो मित्र आपस में बातचीत करते हैं और उनमें से एक आवेश में आकर नदी पर बने रेल के पुल को उड़ाने को आंधी तूफान में निकल पड़ता है। इस दृश्य और पात्रों की क्रिया को प्रकट करने के लिए सबसे पहिले प्रस्तुतकर्ता कलाकारों को बिजली के प्रकाश से संकेत करेगा और वे

संवाद को बासने लग जायेंगे। उस संवाद के फल स्वरूप एक पात्र जब आवेश में आकर वहां से प्रस्थान करने को उद्यत होता है तब वह उस पात्र के संवाद की आवाज धीमी करता जायगा और इस कार्य के साथ ही साथ किसी के जाने की पदचाप के ध्वनि-प्रभाव को प्रस्तुत करने का संकेत करेगा अथवा स्वयं ध्वनि-प्रभाव का रेकार्ड शुरू कर देगा। और तब आंधी-तूफान के ध्वनि-प्रभाव का रेकार्ड के साथ किसी के चलते हुए पांवों की आवाज के प्रभाव को प्रस्तुत कर दिया जायेगा। इस प्रकार रूपक के दृश्य की स्थिति श्रोताओं को पूर्णतया स्पष्ट हो जायगी। उस आंधी-तूफान में किसी के बड़बड़ाने की मंद मंद आवाज् भी प्रस्तुत की जा सकती है। तब फिर श्रोतागण अपने कल्पना-लोक में पात्रों के वाचिक आंगिक और आहार्य अभिनय को देखने में समर्थ हो जायेंगे।

प्रस्तुतकर्ता नाटक नियंत्रण कक्ष में बैठा विभिन्न स्टूडियो के कार्यों का संचालन और समन्वय करता है। उसके पास वाली रूपक की पांडुलिपि में विभिन्न स्टूडियो के कार्य संचालन और समन्वय के लिए संकेत लिखे रहते हैं। वो स्टूडियो की आवाजों का समन्वय करते समय वह इस बात का ध्यान रखता है कि कौन से स्टूडियो की आवाज जोर से सुनाई जाय और किस आवाज् को पृष्ठभूमि में रखा जाय। आवाजों का यह सम्मिश्रण प्रस्तुतकर्ता स्थिति की आवश्यकता के अनुसार करता है। अनेक स्टूडियों के प्रयोग से किसी वस्तु स्थिति का चित्र प्रस्तुत करने की प्रणाली को बहु-स्टोडियो–प्रणाली (मल्टी स्टूडियो सिस्टम) के नाम से पुकारा जाता है। इस विषय में लेखक अपने सुझाव नहीं रखता। यह पूर्णरूपेण प्रस्तुतकर्ता का ही कार्य है।

एक स्टूडियो से भी

ध्वनि प्रभावों संगीत और संवाद आदि को केवल एक स्टूडियो से भी प्रस्तुत किया जा सकता है। ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कार्पोरेशन लंदन

में रूपक प्रस्तुत करने के लिए एक ही स्टूडियो का प्रयोग किया जाता है। इस एक ही स्टूडियो में संगीत संवाद आदि के प्रस्तुत करने के लिए अनेक माइक्रोफोन का उपयोग किया जाता है। प्रस्तुतकर्ता स्टूडियो में आवाजों का रूप-परिवर्तन करने के लिए विशेष स्थानों पर पर्दों का उपयोग करता है। एक ही स्टूडियो के प्रयोग में जहाँ एक ओर सभी कार्य कर्ताओं पर नियंत्रण का अवसर होता है वहाँ दूसरी ओर कलाकार अपने आपको रूपक की वास्तविक स्थिति में पाकर और अच्छा अभिनय करने की प्रेरणा भी प्राप्त करते हैं।

तीन उद्देश्य

जब प्रस्तुतकर्ता संगीत संवाद और ध्वनि प्रभावों के योग-संयोग से रूपक का रिहर्सल करता है तब उसकी दृष्टि तीन बातों पर लगी रहती है संगीत और ध्वनि-प्रभाव के उचित प्रयोग पर, पात्रों के संवाद पर और रूपक के पूर्ण प्रसारण में लगनेवाले समय पर। संगीत और ध्वनि-प्रभाव के उचित अथवा अनुचित प्रयोग के विषय में वह अपनी टिप्पणियां बनाता है और उनमें आवश्यक सुधार करता है। इसी प्रकार वह इस बात का भी ध्यान रखता है कि कौन से पात्र के कौन से संवाद के बोलन का ढंग नीरस अथवा निर्जीव हो गया है और कौन सी पंक्ति धीरे बोलने के स्थान पर जोर से बोली जा रही है, इन कमियों को वह लिखता रहता है और बाद में उन्हें दूर कर देता है। प्रत्येक रूपक के प्रसारण का एक निश्चित समय होता है। प्रस्तुतकर्ता इस निश्चित समय में ही रूपक को प्रसारित करता है। निश्चित समय से कम समय में समाप्त हो जाने पर वह उसे समय के अनुकूल विस्तृत कर देता है। रूपक के प्रस्तुत करने के कार्य में निश्चित समय से अधिक लगने पर उसके कलेवर में वह काट-छाँट करता है। आवश्यकतानुसार प्रस्तुतकर्ता संवाद संगीत अथवा ध्वनि-प्रभाव के समय में परिवर्तन कर देता है।

अभिनय के कलाकार

रूपक के प्रदर्शन को सफल बनाने में उसमें भाग लेनेवाले कलाकारों का भी हाथ है। कलाकारों को प्रस्तुतकर्ता के कार्य को सरल और सफल बनाने में सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये। उनका प्रस्तुतकर्ता के काम में विघ्न न डालना, उसके निर्देशों का पालन करना और अभिनय में सुधार के लिए तत्पर रहना आवश्यक है।

प्रस्तुतकर्ता कलाकारों को बहुत से आदेश और निर्देश करता है। किसी संवाद को बोलते समय वह किसी कलाकार को माइक्रोफोन के समीप आने, उससे दूर हटने अथवा दायें-बायें न जाने के आदेश देता है। इसका एक कारण है। किसी कलाकार की आवाज को कमरे कोठरी भर के बाहर अथवा दूर से आती हुई बताने के लिए कलाकार को एक निश्चित स्थान पर से अपना संवाद बोलना होता है। प्रायः कुछ माइक्रोफोन ऐसे होते हैं जिनके आगे पीछे, दायें बायें चारों दिशाओं की आवाज को स्वीकार करते हैं। वे जीवित भाग कहलाते हैं। यदि माइक्रोफोन के जीवित भाग के सामने खड़े होकर बोला जाता है तो कलाकार की आवाज अपने मूल रूप में सीधी माइक्रोफोन में चली जाती है। दूसरी ओर मृत भाग के सामने खड़े होकर बोला जाय तो कलाकार की आवाज सीधी माइक्रोफोन में प्रवेश नहीं कर पाती है वह दीवाल, वस्तु, व्यक्ति अथवा इस कार्य के लिए रखे गये पर्दे से टकरा कर फिर माइक्रोफोन में प्रवेश करती है। इस प्रकार किसी वस्तु से टकराकर माइक्रोफोन में प्रवेश करने वाली आवाज रेडियो-यंत्र पर धीमी सुनाई देगी। माइक्रोफोन की इस विशेषता का एक लाभ है। जब प्रस्तुतकर्ता यह प्रकट करना चाहता है कि अमुक पात्र दूर से बोल रहा है तब वह उस कलाकार को माइक्रोफोन के मृत भाग के सामने बोलने का आदेश देता है। इसी प्रकार जब पात्र को दूर से पुकारता हुआ प्रकट करना होता है तो कलाकार को माइक्रोफोन

के मूक भाग से जीवित भाग की ओर आने का आदेश दिया जाता है। इन बातों को प्रदर्शित करने के लिए प्रस्तुतकर्ता रूपक के कलाकारों को आदेश देता है। कलाकारों के लिए इन आदेशों को पूरी तरह समझ लेना चाहिये और समझ में न आने पर पुनः पूछ लेना युक्ति-संगत है। तब कलाकार इन आदेशों का पालन अंकवत करते हैं।

कलाकार अपने अभिनय के द्वारा रूपक को सजीव बना सकते हैं। उन्हें पात्रों के समान आचार-विचार और अनुभव करना चाहिये। वे स्वयं अपने को पात्र समझें। नौकर का अभिनय करना हो तो नौकर समझें और अशोक का अभिनय करना हो तो तो अपने आपको सम्राट अशोक समझें। उनमें यह भाव न आवे कि मैं किसी का अभिनय कर रहा हूँ। ऐसा करने पर वे रूपक के पात्रों को पुनः जीवित रूप में प्रकट कर सकते हैं। इस प्रकार से प्रस्तुतकर्ता का कार्य ही सफल और महान नहीं होता अपितु कलाकार की श्रोता प्रशंसा भी करते हैं।

सम्वाद के बोलने के ढंग के विषय में कलाकारों को बिना समझे पहले पूर्व निश्चित विचार नहीं बना लेने चाहिये। प्रस्तुतकर्ता के आदेश इस विषय में अन्तिम माने जाते हैं। और यदि उन्हें प्रस्तुतकर्ता की कोई सम्मति भी जंची हो तो उसे अप्रत्यक्ष रूप से उसके सामने रखना उचित है।

ध्वनि-प्रसारण के कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने में लेखक प्रस्तुतकर्ता और कलाकारों का कार्य बड़ा महत्व का है। लेखक प्रस्तुतकर्ता के काम को सरल बनाने के लिए सम्वाद-संकेतों को स्पष्ट भाषा में लिखता है और प्रस्तुतकर्ता अभिनय संगीत और ध्वनि प्रभावों को प्रस्तुत करता है। कलाकार कथा को सजीव बना कर पात्रों को पुनः जीवित कर सकता है।

रूपक के भेद-प्रभेद

रेडियो-जगत में रूपक के विषय में नित्य नये प्रयोग और परीक्षण किये जाते हैं। इस कारण रेडियो-रूपक का वर्गीकरण करना अत्यन्त कठिन है। फिर भी व्यावहारिक दृष्टि से रूपक के स्वरूप विषय शैली और भाव आदि के आधार पर अनेक भेद-प्रभेद किये जा सकते हैं जिनकी रचना के नियमों और सिद्धान्तों से पाठका अवगत हो जाना लाभदायक होगा।

स्वरूप के अनुसार

शरीर-संगठन और स्वरूप की दृष्टि से रेडियो-रूपक के अनेक भेद हैं।

एक तो वह रेडियो-रूपक है जिसमें एक सुसम्बद्ध कथा होती है। इसमें एकांकी नाटक के सभी तत्व विद्यमान होते हैं और उसकी रचना में ध्वनि-रूपक के सभी आवश्यक सिद्धान्तों का निर्वाह किया जाता है। इस प्रकार के रूपकों में श्री उपेन्द्रनाथ अश्क का 'लक्ष्मी का स्वागत' और डाक्टर राम कुमार वर्मा के 'दस मिनिट' और 'फ़्रैस्ट हैट' एकांकी नाटकों के नाम लिये जा सकते हैं।

नाटकावलि

कभी एक बड़े विचार अथवा उद्देश्य को सामने रखकर नाटकों की एक शृंखला सी प्रसारित की जाती है। इसे नाटकावलि (ड्रामेटिक सीरियल) कहते हैं। इसके सभी रूपक किसी एक मुख्य उद्देश्य की पूर्ति करते हैं और एक रूपक दूसरे रूपक से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सम्बद्ध होता है। इसके शरीरी-संगठन में एक बात का विशेष ध्यान रखा जाता है।

नाटकाभिनि की एक कृति अपने आप में ही आकर्षक और प्रभावोत्पादक नहीं होती यह भूमिका में भाग लेनेवाले रूपक को सुनने की जिज्ञासा जागृत करने की क्षमता भी रखती है । इसकी रचना में लेखकों के लिए सम्पूर्ण और स्वतन्त्र क्षेत्र नहीं खुला हुआ है ।

भाषा-शैली के इसमें वे ही नियम और सिद्धान्त उपयोग में लाये जाते हैं जिनका ब्यौरा पिछले परिच्छेद में दिया जा चुका है ।

फीचर रेडियो की देन

फीचर भी एक प्रकार का रूपक है । डा० सत्येन्द्र ने फीचर को 'सम्भव आधुनिक प्रयोग' मानते हुए इसे रेडियो का आविष्कार बताया है । यह सामान्य रेडियो-रूपक से भिन्न है ।

फीचर में जीवन के किसी लघु पक्ष अथवा विषय पर प्रकाश डालने के लिए उससे सम्बन्धित घटनाओं का नाट्य सा किया जाता है । "इसका उद्देश्य प्राय सूचनात्मक होता है । फीचर में कोई कथानक नहीं होता । न इसमें कोई नायक होता है और न नायिका । इसके पात्र हमारे ही संसार के प्राणी होते हैं । इसमें दैनिक जीवन से चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं यथा भिखारी का जीवन और उसके कार्यों का प्रदर्शन किया जा सकता है । परन्तु इसमें सुसम्बद्ध कथा का अभाव होना आवश्यक है । नगर और ग्राम उत्सव और त्यौहारों पर भी फीचर की रचना की जा सकती है ।

एक सफल फीचर में तथ्यों की भरमार होती है । यह अनेक भागों में विभक्त किया जाता है । प्रत्येक भाग को अभिनय रूप से प्रस्तुत करना अपेक्षित है । तथ्य प्रकट करने के ढंग को नाटक बदल सकता है । पृष्ठ-भूमि में संगीत प्रस्तुत किया जा सकता है तथा आवश्यकता के अनुसार

ध्वनि-प्रभावों का प्रयोग भी किया जाता है । इससे स्वरूप में प्राय आश्चर्य चकित करने और भावों को जागृत करने की क्षमता होती है ।

यथार्थ के अधिक निकट होने के कारण फ़ीचर की भाषा में आडम्बर और चमत्कारिता का अभाव होता है । इसका शब्द-चयन और वाक्य-विन्यास यथार्थ जीवन में प्रयुक्त होनेवाली भाषा पर आधारित होता है । इसमें प्रचलित मुहावरों लोकोक्तियों और 'कोलोक्युअल' शब्दों का प्रयोग भी किया जाता है । फ़ीचर की भाषा और भाव को यथार्थ जीवन के अधिकतम समीप लाने के लिए लेखक उन व्यक्तियों से भेंट भी कर सकता है जिनके जीवन के एकांश पर उसमें प्रकाश डाला गया है ।

कभी कभी प्रस्तुतकर्ता जीवन के किसी अंग से सम्बन्धी तथ्यों और अन्य सम्बन्धित बातों का रेकार्ड भी तैयार कर लेता है । फिर फ़ीचर में ये रेकार्ड किए हुए भाग जोड़ दिये जाते हैं । इस प्रकार के फ़ीचर के आयाम स्टूडियो की ओर से भी तैयार किए जाते हैं । किन्तु यह भी सत्य है कि जीवन के किसी अंग पर लिखे हुये मौलिक फ़ीचर का रेडियो के नाटक-विभाग द्वारा पूर्ण स्वागत किया जाता है । आवश्यकता केवल इस बात की है कि जीवन के किसी लघु अंश के तथ्यों का सार परिमित एवं आकर्षक ढंग से फ़ीचर के रूप में प्रस्तुत करें ।

संगीत-रूपक

रेडियो-रूपकों का एक और महत्वपूर्ण उपरूप है—संगीत-रूपक । इस रूपक में संगीत और नाटकीय कथा का समावेश किया जाता है । संगीत-रूपक [illegible] है । इसके अनेक भेद किये जा सकते हैं । संगीत-रूपक फ़ीचर प्रणाली पर निर्मित किया जा सकता है । दूसरे प्रकार के संगीत-रूपक में आधार में एक कथा रहती है और कथा प्रवाह के अनु-

बीच में संगीत का समावेश किया जाता है । सम्वाद के स्थान पर प्रसारक का भी प्रयोग किया जा सकता है ।

संगीत–रूपक में गीत और वाद्य–संगीत नाटक की कथा से अलग प्रतीत नहीं होते । कथा और संगीत दूध और पानी के समान मिल जाते हैं । उसमें गीत ठूसे न जायें । सम्वाद अथवा प्रसारक की अन्तिम पंक्ति आगे के गीत की प्रथम पंक्ति के अर्थ की भविष्यवाणी करती चाहिये। यह इस कारण से कि संगीत–रूपक में गीत और वाद्य–संगीत कथा–विकास में सहायक होते हैं ।

संगीत-रूपक म मुख्य पात्रों की संख्या सीमित होती है । हां सहगान से कार्यक्रम के लिए कलाकारों की संख्या पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है ।

रेडियो–गीत

गीतों सम्वादों अथवा प्रसारक का शब्द–चयन सुरुचिपूर्ण सौंदर्यमय और श्रुतिमधुर होना आवश्यक है । गीतिकार का गीतों के शब्द-प्रयोग पर विशेष ध्यान देना होता है । गीत में गेय और मूर्त चित्र प्रस्तुत करने वाले शब्दों के प्रयास स लखक अपनी रचना–स्वीकृति का मार्ग–निर्माण कर सकता है । गीतों में छन्दशास्त्र के नियमों का पालन करना भी आवश्यक है। ऐसा करने से सगीतकार के लिए गीतों को स्वर-बद्ध करने में कठिनाई नहीं होती । गीतों में आन्तरिक लय (इंटरनल रिद्म) का समावेश किया जा सके तो अति उत्तम हो । गीतों में लय उत्पन्न करने के लिए कभी कभी शब्दों को दोहराया भी जा सकता है । परन्तु दोहराये जानेवाले शब्द विशेषिताये और प्रभावहीन नहीं होने चाहियें । गीत की प्रत्येक पंक्ति कोमल भावों से ओत-प्रोत होनी अपेक्षित है ।

संगीत-रूपक में विविध वाद्य-वादन एकाकी दुगान और सहगान का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जा सकता है। संगीत की विविधता सम्पूर्ण रूपक को आकर्षक और रमणीय बनाने में सहायक होती है। लेखक रूपक को मिलन गीत और विरह गीत दोनों से सजा-संजो सकता है। कभी कभी कथा-प्रवाह से मेल खाते हुए ध्वनि-प्रभावों का प्रयोग भी किया जा सकता है। संगीत-रूपक में संगीत के प्रयोग पर इतना ध्यान देने से रूपक के प्रस्तुतकर्ता और संगीत-निर्देशक का काम सरल हो जाता है।

संगीत-रूपक में संगीत का प्राधान्य होता है। इसलिए संगीत-रूपक के लिए प्रायः उन विषयों का प्रयोग किया जाता है जिनमें कलाकार सबकी संगीत-मग्न जन-समाज ऋतु-आगमन पर्व त्यौहार और सांस्कृतिक उत्सवों का समावेश होता है। संगीत-रूपक संक्षिप्त सरल और सुमधुर होता है। उसमें गीत और कथा आपस में गुथे रहते हैं। उसका प्रत्येक दृश्य श्रोताओं को एक पूर्ण और मधुर चित्र प्रस्तुत करता है।

चम्पू जीवित हो गया

संगीत-रूपक के समान ही रेडियो के आविष्कार ने साहित्य के एक और रूप—चम्पू—को पुनर्जीवित कर दिया है। चम्पू आज तक संस्कृत और हिन्दी की आलोचना पुस्तकों और लक्षण-ग्रन्थों में दबा पड़ा था। परन्तु रेडियो के कारण साहित्य के इस मृतप्राय रूपक का पुनः प्रचलन हो गया है।

चम्पू एक प्रकार का रूपक है। सामान्य रूपक की भांति इसमें एक नाटकीय कथा होती है और उसमें उसके सभी नियमों का निर्वाह किया जाता है। संगीत-रूपक और चम्पू में भी एक समानता है। चम्पू में

भी गीतों का समावेश किया जाता है । किन्तु संगीत–रूपक में जो संगीत को प्रधानता देनी पड़ती है उसका इसमें अभाव होता है। चम्पू में कथोपकथन भी आवश्यक है । कथोपकथन के अभाव में तो रूपक की साहित्यिक सृष्टि हो ही नहीं सकती । चम्पू में गद्य का समावेश भी किया जाता है । चम्पू एक साहित्यिक रचना है जिसमें गद्य पद्य कथोपकथन कथा संगीत आदि का समावेश किया जाता है । नाटकीय धरातल पर चम्पू तभी आता है जब उसमें एक नाटकीय कथा का समावेश किया जाय ।

चम्पू की रचना में उन अनेक सिद्धान्तों और नियमों का प्रयोग किया जाता है जो संगीत–रूपक साधारण रूपक और श्रुतिमधुर पद्य के लिए निर्धारित हैं । इसमें माइक्रोफोन के लिए लिखे जानेवाले ध्वनि–रूपक की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति की ही जाती है ।

विषय के भेद से वर्गीकरण

विषय की दृष्टि से भी रूपक के अनेक भेद-प्रभेद किये जा सकते हैं । जिस श्रेणी का विषय होता है उसी प्रकार का एक अलग भेद मान लिया जाता है । इस प्रकार के कुछ प्रचलित रूपकों का वर्णन और रचना विधान यहां दिया जाता है ।

सामाजिक नाटक

सामाजिक रूपक में समाज की किसी अवस्था एवं अंग की अभिव्यक्ति की जाती है । इसकी कथा–वस्तु में समाज के रीति–रिवाज आचार–विचार, विधान–व्यवस्था अथवा सामाजिक सम्बन्ध का वर्णन होता है । श्री उपेन्द्रनाथ अश्क के 'लक्ष्मी का स्वागत' में हमारे सामाजिक जीवन की दुरावस्था का दिग्दर्शन किया गया है । इसी प्रकार श्री भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र के "स्ट्राइक" में आधुनिक पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्धों पर एक व्यंग है । यह भी एक सामाजिक रूपक है ।

भारत के रेडियो-जगत में सामाजिक रूपकों का एक विशेष स्थान प्राप्त है। देश के स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् तो इन्हें और भी अधिक महत्व प्रदान करना आवश्यक है। हमारे सामाजिक जीवन का पुनर्गठन और पुनर्निर्माण करना एक राष्ट्रीय आवश्यकता है। इस प्रकार के रूपक की रचना पर विशेष ध्यान देना लेखक के लिए लाभप्रद सिद्ध हो सकता है।

राजनीतिक रूपक

ऑल इण्डिया रेडियो पर साधारणतया ऐसे रूपक स्वीकार नहीं किये जाते हैं जिनमें किसी राजनीतिक विवादपूर्ण प्रश्नों का स्थान लिया गया हो। राजनीतिक रूपक विशेष रूप से राष्ट्रीय संकट, युद्धकालीन स्थिति और देश की आन्तरिक अव्यवस्था और अराजकता के समय प्रसारित किये जाते हैं। उस समय इन रूपकों का उद्देश्य सरकार की राजनीति का समर्थन और विरोधियों का सामना करना होता है। रेडियो के कार्यक्रम में राजनीतिक रूपकों को क्या स्थान प्राप्त है इसका उत्तर तो उस देश के राजनीतिक विधान एवं व्यवस्था को देखकर ही दिया जा सकता है।

राष्ट्रीय रूपक

राजनीतिक रूपक से मिलता जुलता रूपकों का एक और भेद "राष्ट्रीय रूपक" की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। राष्ट्रीय रूपक में राष्ट्र के स्वातन्त्र्य संग्राम की गाथा, राष्ट्र के विकास की योजनाओं तथा अन्यान्य राष्ट्रीय प्रश्नों को स्थान दिया जाता है। एक विकासोन्मुख राष्ट्र के नाते इस प्रकार के रूपकों को बड़े चाव से सुनते हैं। राष्ट्रीय पर्व और स्वाधीनता दिवस के अवसर पर भी ऐसे रूपक प्रसारित किये जाते हैं। राष्ट्रीय रूपकों का रेडियो स्टेशनों पर पर्याप्त स्वागत किया जाता है।

उपयोगितामय रूपक

उपयोगितामय रेडियो-रूपक (युटिलिटी प्ले) में किसी उपयोगी विचार के पक्ष में प्रचार किया जाता है। किसी आर्थिक उद्देश्य को सामने रखकर प्रायः ऐसे नाटकों की रचना की जाती है। एक उदाहरण लीजिये। राष्ट्र पर आर्थिक संकट उपस्थित हो गया। मुद्रा अवमूल्यन के कारण लोगों में यह विचार फैलने लगा कि अमुक वस्तुओं के मूल्य बढ़ जायेंगे। किन्तु सरकार घोषणा करती है कि वस्तुओं के मूल्य नहीं बढ़ेंगे। इसी विचार को नागरिकों तक पहुंचाने के लिए एक नाटकीय कथा में इस विचार का अप्रत्यक्ष रूप में समावेश कर दिया जायगा। 'अप्रत्यक्ष रूप' से इसलिए कहता हूँ कि नाटकीय कहानी की प्रधानता रहेगी अर्थात् नाटक उपदेशात्मक न होकर कलात्मक बन सकेगा। राजस्थान रेडियो जोधपुर से सन् १९६६ में मुद्रावमूल्यन (डिवेल्यूएशन) पर एक ऐसा ही रूपक प्रसारित किया गया था। आज भारत में ऐसे ही विषयों पर प्रणीत रूपकों की बड़ी मांग है।

उपयोगितामय रेडियो-रूपक अमेरिका के उन रेडियो-रूपकों के समान हैं जिनके द्वारा वस्तुओं का विज्ञापन किया जाता है। विज्ञापन वाले और उपयोगितावादी रूपक में एक अन्तर है। प्रथम का दृष्टिकोण व्यापारिक है तो दूसरे का राष्ट्रीय अर्थात् उसमें सामाजिक अपील रहती है। उपयोगितावादी रूपक में किसी बात की उपयोगिता का दिग्दर्शन किया जाता है।

तथ्य प्रदर्शक रूपक

विषय की दृष्टि से रूपक का एक और भेद है जिसे तथ्य प्रदर्शन रूपक कहते हैं। इस प्रकार के रूपक में लेखक किसी प्रकार की शिक्षा नहीं देता। वह किसी बात का निष्कर्ष नहीं निकालता है। इसमें किसी विषय से संबंधित तथ्यों को प्रकट किया जाता है। लेखक उन तथ्यों की अनुभूति की अभिव्यंजना मात्र करता है।

रेडियो-संसार में शब्द प्रधान रूपकों का न तो अधिक महत्त्व है और न मान ही। भारत में रेडियो शिक्षण का प्रथम माध्यम माना गया है। इस कारण प्रायः केवल तथ्य और वस्तु स्थिति की अनुभूति को प्रकट करने वाले रूपक अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकते हैं। हाँ एक विशिष्ट प्रकार के रूपक की पुष्टि में इसका उपयोग किया जा सकता है।

जीवन प्रदर्शक रूपक

तथ्य-प्रकाशक रूपक के समान एक और प्रकार का रूपक है जिसका रेडियो संसार में पूर्ण स्वागत किया जाता है और वह है जीवन प्रदर्शक रूपक। जीवन प्रदर्शक रूपक में किसी असाधारण अथवा महत्त्वशाली पुरुष की जीवनी, जीवन का एकांश अथवा जीवन की अनेक झलकें प्रस्तुत की जाती हैं। इसके तीन मुख्य भेद हो सकते हैं। प्रथम प्रकार के रूपक में किसी विख्यात व्यक्ति की जीवन-गाथा को प्रकट किया जाता है। इसे 'आत्म-परिचयात्मक रूपक' (बायोग्राफिकल रूप) के नाम से पुकारते हैं। दूसरे प्रकार के रूपक को 'झांकी' कहते हैं। इसमें जीवन की एकांग का प्रदर्शन किया जाता है। इसमें जीवन की एक झांकी मात्र होती है। तीसरे प्रकार के नाटक में लेखक किसी व्यक्ति के जीवन की अनेक झलकें प्रस्तुत करता है। उस व्यक्ति के जीवन के अनेक पहलुओं को अंकित करता है और उसके द्वारा सम्पूर्ण रूपक के अन्त में श्रोता के मानस पटल पर प्रमुख पात्र के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का चित्र अंकित हो जाता है। इस जीवन प्रकाशक रूपक को मैं "जीवन झलक" के नाम से पुकारना युक्ति-संगत समझता हूँ।

उपर्युक्त तीनों प्रकार के रूपकों की रचना के लिए लेखक सबसे पहिले ऐसे व्यक्ति को प्राप्त करता है जो इस प्रकार के रचना का नायक बनने योग्य हो। इस नायक अथवा नायिका का जीवन स्वयं ही नाटकीय होता है। यह ऐसा पात्र भी हो सकता है जो ऐतिहासिक राजनीतिक सामाजिक प्रवृत्ति क्षेत्रों में आदर्शों के लिए आदर अथवा अनादर, विस्मय अथवा जिज्ञासा का पात्र हो।

नाटककार इस व्यक्ति के प्रति सहानुभूति रखता है। वह उसके जीवन का व्यापक और सूक्ष्म अध्ययन करता है। वह उसके आचार-विचार, आदर्श आकांक्षाओं स्वभाव आदि सभी बातों का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। इस जानकारी के लिए वह पुस्तकों जीवन-चरित आत्म चरित आदि का अध्ययन कर सकता है और उन लोगों से अनेक उपयोगी बातें जान सकता है जो उस व्यक्ति के सम्पर्क में आ चुके हों।

जीवन प्रदायक रूपक को लिखने का एक विशिष्ट ढंग है। जीवन चरितात्मक रूपक में लेखक के लिए अपने नाटक के चरित नायक के जीवन का जन्म से मृत्यु पर्यन्त तक का क्रम-पूर्वक ब्योरा प्रस्तुत करना उचित नहीं है। यह न हो अमुक व्यक्ति अमुक सन् में उत्पन्न हुआ अमुक सन् में उसने दसवीं कक्षा पास की और फिर जेल गया और अमुक सन् में उसे फांसी की सजा हो गयी। जीवन चरितात्मक रूपक के लिए घटनाओं का यह क्रम उचित नहीं है। इस घटना क्रम में श्रोताओं की रुचि और जिज्ञासा को जागृत करने की शक्ति का अभाव है। अपने घटना-क्रम को आकर्षक रमणीय और प्रभावोत्पादक बनाने के लिए लेखक अपने चरित के लिए नायक के जीवन की किसी तीव्र घटना अथवा उस विशेषता से रूपक का प्रारम्भ करता है जिसके कारण लोग उसे याद करते हैं। इस प्रकार का प्रारम्भ श्रोताओं की अभिरुचि को जागृत कर देता है। और वे इस स्थल के आगे की घटनाओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए उत्सुक हो जाते हैं। इस प्रारम्भ के पश्चात् लेखक इस प्रारम्भ के स्थल अथवा घटना के पूर्व इतिहास की ओर संकेत कर सकता है, सम्वाद अथवा घटना के रूप में। ऐसा कर लेने के बाद वह उस पात्र के आगे के जीवन के महत्त्वपूर्ण स्थल की ओर अग्रसर हो जाता है। माइक्रोफोन के लिए लिखे जाने वाले नाटकों में इस प्रकार का क्रम अत्यधिक सफल होता है। "जीवन झलक" नाम के रूपक के लिए भी इस क्रम का उपयोग करना अपेक्षित है।

जीवन चरित्रात्मक नाटक और जीवन झलक रूपक में एक अन्तर है। जीवन चरित्रात्मक नाटक का उपयोग विशेषतया अतीत के युगप्रवर्तकों महात्माओं ऐतिहासिक पुरुषों और प्राचीन धीरात्माओं के लिए करना उचित है। तब फिर इसमें किसी अंश तक कल्पना का सहारा लिया जा सकता है और तथ्यों को कुछ अतिशयोक्ति के साथ प्रकट किया जा सकता है। किन्तु अपने समकालीन विलक्षण व्यक्तियों की जीवन-गाथा को नाटक के रूप में अभिव्यक्त करने में लेखक को इस प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं है। उनके जीवन को नाटक के रूप में प्रकट करने के लिए "जीवन झलक" का प्रयोग करना उचित है। इस प्रकार के रूपक में कल्पना के स्थान पर तथ्यों और यथार्थ घटनाओं का विशेष रूप से सहारा लेना होता है।

समस्या मूलक नाटक

वर्तमान संघर्षशील जीवन ने समस्यामूलक नाटक (प्रोब्लेमेटिक प्ले) को जन्म दिया है। समस्यामूलक नाटक पूर्ण रूप से पश्चिम की देन है। इसमें किसी सामाजिक अथवा राजनीतिक समस्या का अंकन किया जाता है। इसी प्रकार विषय की दृष्टि से रूपक के और भी भेद किये जा सकते हैं। विषय की दृष्टि से किये गये रूपकों के भेद से भी अधिक महत्त्व रूपकों के उस वर्गीकरण का है जिसमें शैली के आधार पर रूपकों के भेद-प्रभेद किये जाते हैं।

शैली के आधार पर

शैली की दृष्टि से दो तीन प्रकार के नाटकों का अधिक प्रचलन है। एक तो वह रूपक है जिसमें सामान्य शैली का उपयोग किया जाता है। कथाकार सरल और सहज रूप में अपनी कथा को प्रकट कर देता है। इसमें पात्र और प्रसंग सीधे से भावों की अभिव्यंजना करते हैं।

व्यंग्यात्मक रूपक

व्यंग्यात्मक रूपक एक विशेष शैली के परिचायक हैं। व्यंग्य और कटाक्ष को हमारे साहित्य और जीवन दोनों में बड़े महत्व का स्थान

प्राप्त है। इस प्रकार के व्यंग से परिपूर्ण सम्वाद सजीव और प्रभावोत्पादक होते हैं। व्यंग्यात्मक रूपक के कथोपकथन में कटाक्ष अथवा वक्रोक्ति होता है। यह व्यंग पात्रों पर, परिस्थिति पर अथवा किसी सामाजिक राजनीतिक सांस्कृतिक व्यवस्था पर हो सकता है। श्री भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र का एक एकांकी नाटक है "स्ट्राइक"। नई सभ्यता के पोषक एक व्यक्ति ने अपनी पत्नी को अतिशय स्वतन्त्रता दे रखी है। खान का प्रबन्ध करता है परन्तु पत्नी घर पर नहीं है। मानो घर के रसोईघर में चैकड़ी के समान 'स्ट्राइक' हो गई हो! लेखक का यह कथन हमारी सामाजिक व्यवस्था पर एक तीव्र व्यंग है।

व्यंग्यात्मक रूपक का वस्तु-विषय व्यंग करने के उपयुक्त होना आवश्यक है। वह ऐसा पात्र अथवा विषय न हो जिसे अधिकांश श्रोता आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखते हों। वह विषय ऐसा हो जिसे श्रोता सरलता से समझ सकें और जिस पर किया गया व्यंग उन्हें स्वीकार हो सके। उसके प्रति नाटककार कठोर और हृदयहीन नहीं बनता। कठोरता से किया हुआ व्यंग श्रोताओं को आनन्दित करने में असमर्थ होता है। इसलिए नाटक के व्यंग में नम्रता तथा वाक्-वैदग्ध्य वक्रोक्ति होना चाहिए। इसके लिए नाटककार को इस बात की ओर सजग रहना उचित है कि सभा-समाज में किस प्रकार लोग एक दूसरे पर व्यंग करते हैं किस प्रकार चुटकी लेते हैं।

किसी वाक्य में वक्रोक्ति को उत्पन्न करने के लिए लेखक उस वाक्य की तोड़-मरोड़ कर सकता है। भावों को व्यंग के रूप में प्रकट करने के लिए वह उसमें उस समय तक परिवर्तन कर सकता है जब तक उसमें व्यंग का समावेश न हो जाय। व्यंग्यात्मक रूपक में अनेकानेक वाक्यों में व्यंग का समावेश करने का प्रयत्न करना चाहिये उसमें व्यंग की प्रधानता हो। परन्तु व्यंग्यात्मक रूपक में यह आवश्यक नहीं है कि उसके प्रत्येक

हास्य में व्यंग विद्यमान हो । रूपक के कथावस्तु के द्वारा जीवन के किसी अंग पर व्यंग हो सकता है। व्यंग्यात्मक रूपक में व्यंग का रूप उभरा हुआ प्रतीत होना आवश्यक है । हां साधारण रूपक में भी कहीं कहीं व्यंग का समावेश हो सकता है ।

रेडियो–जगत में व्यंग्यात्मक रूपक की तीव्र मांग है। श्रोता व्यंग पूर्ण रूपक बड़े चाव से सुनते हैं। हमारे साहित्य में व्यंग से ओत प्रोत रूपक के लिए व्यापक क्षेत्र खुला पड़ा है । व्यंग के साथ प्राय हास्य का भी समावेश होता है ।

प्रहसन

प्रहसन और हास्यपूर्ण नाटक के द्वारा जन–मनोरंजन और जन–शिक्षण के दोनों उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है । रेडियो समय समय पर ऐसे नाटक प्रसारित करता है । कारण यह है कि हास–परिहास की हमारे जीवन में बड़ी आवश्यकता है ।

बेमेल वस्तु स्थिति बेमेल बात अथवा बेमेल भाषा के कारण हास्य की उत्पत्ति होती है । हास्य के लिए किसी वस्तु में बेमेल बात का होना आवश्यक है । इस नियम के अनुसार हास्यपूर्ण रूपकों के कुछ स्वरूपों का अधिक प्रचार है ।

अनेक बार पात्र की परिस्थिति के कारण हास्य की उत्पत्ति होती है । इसे "परिस्थिति–जन्य हास्य" कहते हैं । नाट्यकार हास्य की ऐसी परिस्थितियों की खोज में रहता है । अपनी पैनी दृष्टि से निरीक्षण करने पर लेखक को अपने चारों ओर ऐसी अनेक परिस्थितियां मिलेंगी जो हास्योद्रेक करने की क्षमता रखती हैं। फिर अपनी कल्पना के द्वारा लेखक स्वयं भी हास्य उत्पन्न करनेवाली परिस्थितियां प्राप्त कर सकता है । यहां मुझे श्री सुन्दर मोहन स्वरूप के रेडियो रूपक "प्रमेन फर्म"

का स्मरण हो आता है । केशव अपनी पत्नी उमा से झगड़ता है । उमा केशव के मित्र रमेश को सफंगा कहती है । केशव इस बात पर हठ करता और कहता है कि रमेश ने उसे आज प्रीतिभोज में बुलाया है वह सफंगा नहीं है । केशव बहुत झगड़े के पश्चात् उमा को खाना न बनाने के लिए कह कर घर से चला जाता है । परन्तु आशा के विपरीत "अप्रेल फूल" बनकर घर लौटने पर उसके और उसके भाई के पेट में चूहे दौड़ते मालूम होते हैं । दोनों चोर की तरह दबे पांव रसोईघर में पहुंचते हैं । केशव फौरन मुंह में दो चार लड्डू भर लेता है । दुर्भाग्यवश अंधेरे के कारण बर्तन गिर जाते हैं । उमा रसोई घर में आ जाती है और तब फिर —

उमा — (लाइट जलाकर) ओह यहां तो बिल्ली क्या बड़े बड़े बिलाव घुस आये हैं !

रमेश — भाभी बात यह है अ अ अ अ एक्सीडेन्ट हो गया । हां भाभी मोटर तांगे से टकरा गई और क्या बताऊं भाभी भय्या को हार्ट्रोफेरी आपरेशन हो गया । इसलिए लेमन के लिए भाग दूध रहे हैं ।

उमा — (घबराहट से) हां हा हैं! कहां चोट लगी है ? ये मरे मोटरवाले अन्धाधुन्ध चलाते हैं । माता जी को भी बुलाऊं (जोर से) मां

केशव — (मुंह भरे हुए) हूं हूं यह क्या करती हो ।

उमा — (हंसकर) ओह ! यह बात है । अरे बड़ी चोट लगी है । यह क्या हैरत नकरा हो गया है । आंख डूबी है (रुककर) तो साहब ये लड्डू मार रहे हैं ।

उपर्युक्त संवाद में एक ऐसी परिस्थिति है जिसे सुनकर हास्योद्रेक हो जाता है । परन्तु परिस्थिति-जन्य हास्य में तर्क बातों का ध्यान रखना

आवश्यक है। रेडियो-रूपक में पात्र की परिस्थिति ऐसी होनी चाहिये जिसका भान श्रोताओं को वाणी के द्वारा कराया जा सके। उसे आँखों से देखने पर ही आनन्द आये ऐसी बात नहीं होनी चाहिये। संवाद और ध्वनि-प्रभाव द्वारा श्रोताओं के मन में स्थिति को स्पष्ट किया जा सकता है।

चतुर लेखक शब्दों के खिलवाड़ से भी श्रोताओं को हँसा देता है। इस प्रकार के हास्य को सम्वाद-हास्य कहते हैं। यहाँ मैं प्रो० रमासिंह के रेडियो रूपक से कुछ सम्वाद उद्धृत करता हूं। लालाजी एक अतिशय डरपोक और ऊंची ऊंची डींग हांकनेवाले प्राणी थे। एक दिन उनके मित्र ठाकुर साहब ने उन्हें शेर के शिकार पर चलने को कहा परन्तु लालाजी बहाने बाजी करने लगे कि इसके लिए ललाइन से आज्ञा लेनी आवश्यक है। इसी समय उनके नौकर कल्लुआ ने ललाइन को इस बात की सूचना दे दी और वह शेर के शिकार की आज्ञा का संदेश पहुंचाकर वापिस लौट आया और तब फिर—*

लालाजी – कहो कल्लू ललाइन ने क्या कहा ?

कल्लुआ –कुछ नहीं सरकार !

लालाजी –कहदे, कहदे कल्लुये हम नाराज नहीं होंगे। यहीं न कि खबर होते ही उसकी आँखों से आँसू की नदी फूट पड़ी।

कल्लुआ –नहीं लालाजी।

लालाजी –(आश्चर्य से) नहीं ?

कल्लुआ —जी हां जब मैंने कहा कि आप शेर के शिकार जा रहे हैं तो खिल खिलाकर हँस पड़ीं।

की स्मरण ही आता है । केशव अपनी पत्नी उमा से झगड़ता है । उमा केशव के मित्र रमेश को लफंगा कहती है । केशव इस बात पर हठ करता और कहता है कि रमेश ने उसे आज मीटिंग में बुलाया है वह लफंगा नहीं है । केशव बहुत झगड़े के पश्चात् उमा को खाना न बनाने के लिए कह कर घर से चला जाता है । परन्तु आशा के विपरीत "ममेल कुम" चलकर घर लौटने पर उसके और उसके भाई के पेट में चूहे दौड़ते मालूम होते हैं । दोनों चोर की तरह दबे पाँव रसोईघर में पहुँचते हैं । केशव फौरन मुँह में दो चार लड्डू भर लेता है । दुर्भाग्यवश अंधेरे के कारण बर्तन गिर जाते हैं । उमा रसोई घर में आ जाती है और तब फिर —

उमा – (लाइट जलाकर) ओह यहाँ तो बिल्ली क्या बड़े बड़े बिलाव घुस आए हैं ।

रमेश – भाभी बात यह है भ भ भ भ एक्सीडेन्ट हो गया । हाँ भाभी मोटर ताँगे से टकरा गई और क्या बताऊँ भाभी भैय्या को हाइड्रोपरी प्राकलाइज हो गया । इसलिए भौंकने के लिए भाग कूद रहे हैं ।

उमा – (घबराहट से) हाय हाय देखूँ कहाँ चोट लगी है ? मैं मरे मोटरवाले सत्यानाश जलाते हैं । माता जी को भी बुलाऊँ (जोर से) माँ

केशव – (मुँह भरे हुए) हैं हैं यह क्या करती हो ।

उमा – (सूँघकर) ओह ! यह बात है । अरे बड़ी चोट लगी है । यह क्या हैरत पैदा ही गया है । पाँच हुजूरी है (रुककर) तो साहब ये लड्डू मार रहे हैं ।

उपर्युक्त संवाद में एक ऐसी परिस्थिति है जिसे सुनकर हास्योद्रेक हो जाता है । परन्तु परिस्थिति-जन्य हास्य में तर्क बात को ध्यान रखना

आवश्यक है । रेडियो-रूपक में पात्र की परिस्थिति ऐसी होनी चाहिए जिससे वह भावनाओं को वाणी के द्वारा बताया जा सके । उसे आँखों से देखने पर ही आनन्द आये ऐसी बात नहीं होनी चाहिये । संवाद और ध्वनि प्रभाव द्वारा श्रोताओं के मन में स्थिति को स्पष्ट किया जा सकता है ।

चतुर लेखक शब्दों के खिलवाड़ से भी श्रोताओं को हँसा देता है । इस प्रकार के हास्य को संवाद-हास्य कहते हैं । यहाँ मैं प्रो० दयालसिंह के रेडियो रूपक से कुछ संवाद उद्धृत करता हूँ । मामाजी एक अतिशय डरपोक और ऊँची ऊँची डींग हाँकनेवाले प्राणी थे । एक दिन उनके मित्र ठाकुर साहब ने उन्हें शेर के शिकार पर चलने को कहा परन्तु मामाजी बहाना बाजी करने लगे कि इसके लिये ललाइन से आज्ञा लेनी आवश्यक है । इसी समय उनके नौकर कलुआ ने ललाइन को इस बात की सूचना दे दी और वह शेर के शिकार की आज्ञा का संदेश पहुँचाकर वापिस लौट आया और तब फिर—

मामाजी – कहो कल्लू ललाइन ने क्या कहा ?

कलुआ –कुछ नहीं सरकार !

मामाजी –अरे कहो कलुवे हम नाराज नहीं होंगे । यही न कि खबर होते ही उनकी आँखों से आँसू की नदी फूट पड़ी ।

कलुआ –नहीं मामाजी ।

मामाजी –(आश्चर्य से) नहीं ?

कलुआ –जी हाँ जब मैंने कहा कि आप शेर के शिकार जा रहे हैं तो खिल खिलाकर हँस पड़ीं ।

लालाजी –(भाव बदल कर) वाह रे बहादुर औरत ! अरी वाह रे ललाइन आज तुम पर हमें वाकई गर्व है । (जोर देकर) देखा ठाकुर साहब ललाइन की हिम्मत उसके हौसले को उसकी बहादुरी को ?

ठाकुर – यह कैसे ?

लालाजी – समझे नहीं ठाकुर साहब ! इतना तो एक मुसाफा था । यह बात सुनकर ललाइन का दिल (जोर देकर) टुकड़े टुकड़े होगया होगा । हृदय गदगद आँखों में आँसू लेकिन मजाल क्या कि चेहरे पर एक रेखा भी आ जाय ! दाद दीजिए ठाकुर साहब औरत की ऐसी बहादुरी की ।

इस सम्वाद में लालाजी के शब्दों के खिलवाड़ से श्रोताओं को हँसी आजाती है । क्योंकि लालाजी ने अपनी झेंप को छिपाने का प्रयत्न किया है । साधारण मनुष्य के व्यवहार और प्रकृति से मेल न खानेवाला उनका यह बेमेल प्रयास हास्य का सृजन कर देता है ।

कभी कभी पात्रों के चरित्र-चित्रण के ढंग से भी हास्य का संचार होता है । उन पात्रों के चरित्र में ऐसी विशेषताएं अथवा अभाव होते हैं जिनके चित्रण से श्रोता हँस पड़ता है । उदाहरणार्थ बहुधा भूल करनेवाले पति और पत्नी दार्शनिक कंजूस व्यक्ति अतिशय फैशन करने वाली महिला आदि के चरित्र-चित्रण के द्वारा श्रोताओं को हँसाया जा सकता है । पात्रों के प्राकृतिक अभावों के कारण भी हास्य की उत्पत्ति हो सकती है । पात्रों का हकलाना अथवा नाक से बोलने के स्वभाव के कारण श्रोताओं को हँसाया जा सकता है । तकिया कलाम अथवा एक अथवा अनेक शब्दों को बहुधा दोहराने पर भी श्रोताओं को हँसी आ जाती है । पात्रों के नाम करण भी हास्य का उद्रेक कर सकते हैं ।

हास्यरस के रूपक लिखनेवाले नाट्यकार के लिए हास-परिहास करनेवाले व्यक्तियों के सम्पर्क में आना चाहिये। फिर सजग मस्तक सूक्ष्म अवलोकन से अपने चारों ओर से भी हास्य की सामग्री प्राप्त कर सकता है। आपको उस समय हंसी आये बिना नहीं रह सकती है जब आप यह देखते हैं कि एक छोटा बच्चा अपने दादाजी की मूंछों को दोनों हाथों में पकड़कर इस तरह खींच रहा हो जैसे घोड़े की लगाम को सम्हाले हो। साधारण से साधारण परिस्थिति पर लेखक के लिये हास्योद्रेक के ढंग से सोचने की आदत डालनी चाहिये।

व्यावहारिक लेखक हास्य-प्रधान रूपक की रूप रेखा बनाकर उसे मनोरंजक ढंग से लिखने का प्रयत्न करता है। फिर वह संवादों में हास्य की मात्रा में वृद्धि करता है। इस कार्य में हास्यजनक परिस्थिति का पहिले ही विचार कर लेना उचित है। हास्य को उत्पन्न करनेवाली मुख्य परिस्थिति नाटक के लिए चरमोत्कर्ष का कार्य देगी।

लेखक की भाषा हास्य के अनुकूल एवं स्वाभाविक होनी आवश्यक है। हास्य प्रधान रूपक लिखनेवालों को भद्दे और भोंडेपन से बचना चाहिये। रेडियो एक सामाजिक संस्थान है। भोंडे हास्य का वहां बहिष्कार किया जाता है। यदि रेडियो-लेखक अपने हास्यरस के रूपक में शिष्टता और शिक्षा का समावेश कर सके तो रेडियो पर उसका अपूर्व स्वागत किया जायगा।

गम्भीर शैली के रूपक

शैली के सिद्धान्त पर प्रो० सत्येन्द्र ने रूपक का एक भेद और माना है। और वह है गम्भीर शैली में लिखा जानेवाला रूपक 'गम्भीर शैली में लिखे हुए नाटक हल्की शैली में लिखे हुओं से भिन्न स्पष्ट प्रतीत हो जाते हैं।"

रेडियो-जगत में

रेडियो-जगत में कौन सी शैली का प्रयोग अपेक्षित है ? इसका कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया जा सकता है । हाँ लेखक को विषय के अनुरूप अपनी शैली रखनी होती है । जीवन की गंभीर एवं मर्मस्पर्शी समस्याओं के लिए हल्की शैली का प्रयोग उचित नहीं है । एक सफल रेडियो-रूपक की भाषा-शैली विषय के अनुकूल ही होती है ।

काल के अनुसार विभाजन

काल के अनुसार भी रेडियो-रूपक का विभाजन किया जा सकता है काल के अतीत, अर्वाचीन और अनागत तीन भेद किये जाते हैं । जो विषय इन तीनों काल में से जिस काल से संबंधित होता है वह उसी श्रेणी का रूपक कहलायेगा । वादों के प्रादुर्भाव के कारण इस प्रकार का वर्गीकरण आवश्यक हो गया है ।

अतीत की समस्या, समाज और विषय को लेकर चलनेवाले रूपक को अतीत विषयक रूपक की संज्ञा दी जा सकती है । ऐतिहासिक रूपक इसका एक उदाहरण मात्र है । अतीत विषयक रूपक अतीत के इतिहास से तत्कालीन समय का वातावरण प्रस्तुत करता है । लेखक तत्कालीन इतिहास का सांगोपांग अध्ययन, मनन और चिन्तन करता है । ऐतिहासिक रूपक के प्रणयन के लिए उस युग के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आचार-विचार और परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त करनी आवश्यक होती है ।

ऐतिहासिक रूपक में लेखक इतिहास के किसी समय से किसी प्रमुख नामी परिस्थिति, पात्र अथवा प्रसंग को चुनता है । लेखक का विषय ऐसा हो जो श्रोताओं की रुचि को जागृत कर सके । विषय का ऐतिहासिक तथ्य और सत्य पर आधारित होना अनिवार्य है । इतिहास-विरुद्ध तथ्यों और

घटनाओं पर श्रोतागण अविश्वास ही नहीं करते अपितु प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उसका विरोध भी करते हैं । श्रोताओं में नाटक के कथावस्तु पर अविश्वास का उत्पन्न होना नाट्यकार की सबसे बड़ी असफलता है । इतिहास के अनुकूल तथ्य और घटनाओं के विषय में यहाँ दो विरोधी मत हों तो अधिक विश्वसनीय मत स्वीकार करना वांछनीय है । पात्रों स्थानों और प्रसंगों का चुनाव इतिहास के अनुकूल होता है । इस दृष्टि से ऐतिहासिक रूपक को विश्वसनीय और प्रभावोत्पादक बनाने के लिए लेखक तत्कालीन प्रसिद्ध पुरुषों समस्याओं तथा धार्मिक राजनीतिक और भौतिक उन्नति अथवा अवनति की ओर संकेत कर सकता है । किन्तु उसका नाटक की कथा से किसी न किसी रूप में सम्बन्ध होना आवश्यक है ।

ऐतिहासिक रूपक की सभी बातें इतिहास ही से ली जायं यह आवश्यक नहीं है । यदि ऐसा ही किया जाय तो ऐतिहासिक रूपक इतिहास की अनुकृति मात्र हो जायेंगे । नाटक की कहानी के निर्माण में लेखक अपनी कल्पना का उपयोग कर सकता है तत्कालीन परिस्थितियों का अनुकूल अतिशयोक्ति के साथ प्रकट भी कर सकता है परन्तु लेखक इतिहास प्रसिद्ध सर्व-विदित और सर्वसम्मत पात्र परिस्थिति और प्रसंग को किसी अन्य रूप-रंग में प्रकट करने की अनधिकार चेष्टा नहीं कर सकता है ।

काल के अनुसार दूसरे प्रकार के रूपक को "अर्वाचीन रूपक" का नाम दिया जा सकता है । इस प्रकार के रूपक में अर्वाचीन समय के दृश्य परिस्थिति अथवा प्रश्न से कथानक का निर्माण किया जाता है । वर्तमान समय के सामाजिक धार्मिक राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विषयों पर यह अपना रूपक का ढाँचा खड़ा करता है । इस प्रकार के रूपकों की रचना प्रगतिशील नाट्यकारों ने बहुतायत से की है । उनके अनुसार "कला का काम जीवन की व्याख्या करना ही नहीं, वरन् उसे दिशा भी देना

है। यही कारण है कि प्रगतिवादियों ने विगत महायुद्ध काल (१९३९-४५) में समीचीन रूपकों की प्रचुर रचना की थी। राष्ट्र के प्रत्येक क्षेत्र के सर्वतोन्मुखी विकास के लिए इस प्रकार के रूपकों का निर्माण करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य ही है। वर्तमान सामाजिक राजनीतिक सांस्कृतिक औद्योगिक और धार्मिक प्रश्नों पर इस प्रकार के रूपकों की रचना की जा सकती है।

काल के अनुसार तीसरी श्रेणी के नाटकों को अनागत रूपक की संज्ञा दी जा सकती है। इन रूपकों में भविष्य के सम्भावित विषयों, व्यक्तियों और व्यवस्थाओं पर रचना की जाती है। भविष्य के समाज, विज्ञान व्यक्ति अथवा सम्भावनाओं पर रूपक की रचना करना विज्ञान और समाज की उन्नति पर निर्भर है। पंडित राहुल सांकृत्यायन की रचना 'बीसवीं सदी के बाद' अनागत विषय का वर्णन करती है। अंग्रेजी साहित्य में ऐच. जी. वेल्स ने इस प्रकार की रचनाओं का प्रचुर निर्माण किया है।

भाषा-शैली

काल के अनुसार विभाजित इन तीनों प्रकार के रूपकों में लेखक साधारण रूपक और रेडियो रूपक के सिद्धान्तों और नियमों का उपयोग तो करता ही है। उसे और भी कुछ बातों का ध्यान रखना पड़ता है। लेखक को पात्र और युग के अनुरूप भाषा का प्रयोग करना चाहिये। महाराजा अशोक संस्कृत प्राकृत अथवा पाली ही बोलें यह आवश्यक नहीं है। किन्तु यह भी उचित नहीं है कि महाराजा अशोक उर्दू शब्दों का प्रयोग करें और अपनी महारानी को "जानम दिलरुबा" से सम्बोधित करें। महाराजा अशोक के मुख से शुद्ध और शिष्ट हिन्दी का प्रयोग सुविधा-जनक और स्वाभाविक लगेगा। अतीत वर्तमान और अनागत तीनों प्रकार के रूपकों में इस बात का ध्यान रखना अपेक्षित है।

ऐतिहासिक रूपक में दृश्यों के क्रम के विषय में एक और बात का ध्यान रखा जाता है। दो दृश्यों के बीच में इतना अधिक समय न रखा जाय कि उन दोनों का सम्बन्ध अस्वाभाविक प्रतीत हो। एक दृश्य का अंत दूसरे दृश्य के आरम्भ की ओर संकेत करे। दृश्यों के बीच के समय को पूरा करने के लिए प्रभावक अथवा संगीतात्मक मध्यमिका का उपयोग भी किया जा सकता है।

रेडियो के लिए

ऐतिहासिक रूपक श्रोता-समाज द्वारा बहुत पसंद किये जाते हैं। फिर प्रत्येक नागरिक के लिए उसके देश के अतीत का इतिहास श्रद्धा और गौरव का स्थान रखता है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास को उसके स्पष्ट और सम्पूर्ण रूप में श्रोताओं के सम्मुख रखने की आज एक बड़ी आवश्यकता है। रेडियो स्टेशनों पर ऐतिहासिक रूपकों का पर्याप्त उपयोग किया जाता है। रेडियो का यह भी कर्तव्य है कि हमारे स्वा-तन्त्र्य-संग्राम की पुनीत गाथा को जन-समाज के समक्ष उसके सजीव रूप में प्रस्तुत करे।

अर्वाचीन रूपक का तो रेडियो जगत में ऐतिहासिक रूपक से भी अधिक महत्व का स्थान है। रेडियो का उद्देश्य लोगों का मनोरंजन करना ही नहीं अपितु उनका विकास करना भी है। वर्तमान समय की महत्वपूर्ण समस्याओं और महान पुरुषों के जीवन को प्रकट कर, हमारे समाज की विकास योजनाओं को बल प्रदान किया जा सकता है। अर्वा-चीन विषय पर लिखे जाने वाले रूपकों का इस दिशा में बड़ा महत्व है।

किसी समागत विषय अथवा व्यवस्था पर प्रणीत रूपकों का भी रेडियो पर उपयोग किया जा सकता है। परन्तु इन रूपकों का प्रयोग अवसर के रूप में ही करना सम्भव है। इस प्रकार के रूपकों से श्रोताओं

की नैतिक और बौद्धिक विचारधारा को उचित रूप से विद्यान्तरित किया जा सकता है। यथा स्वर्गलोक की कल्पना पर ऐसा रूपक लिखा जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वरूप विषय शैली और काल के अनुसार रूपक के अनेक भेद-प्रभेद किये जा सकते हैं। स्वरूप की दृष्टि से फीचर, कम्पू और संगीत-रूपक मुख्य विभेद हैं तो विषय की दृष्टि में सामाजिक और जीवन प्रवर्तक-रूपक। रेडियो पर व्यंग्यात्मक और हास्य प्रधान रूपकों का बड़ा स्वागत किया जाता है। यहां पर ऐतिहासिक और अर्वाचीन रूपकों की भी अपनी अपनी विशेष उपयोगिता और आवश्यकता है।



रेडियो-रूपान्तर

रंगमंच के लिए संस्कृत हिन्दी गुजराती मराठी बंगला तामिल और देश-विदेश की अनेक भाषाओं में सुन्दर रूपकों की रचना की गई है। इसी प्रकार उपन्यासों और आख्यायिकाओं के रूप में हजारों रूपक बनाए सम्भव है। रेडियो-जगत में इन समस्त रचनाओं को श्रोताओं के लिए रेडियो नाटक के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाता है। जब किसी रंगमंच के नाटक अथवा उपन्यास या कहानी को रेडियो-नाटक के रूप में परिवर्तित किया जाता है तब वह रचना मूल रचना का रेडियो-रूपान्तर कहलाती है। रेडियो-रूपान्तर करते समय उस रचना में उन आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है जो एक अच्छे ध्वनि-रूपक में विद्यमान होती है। रेडियो-रूपान्तर करने के लिए कुछ उपयोगी बातें बताई जा सकती हैं।

नाटक का रूपान्तर

रंगमंच के नाटक का रेडियो-रूपान्तर करते समय रूपान्तरकार मूल रचना में कम से कम परिवर्तन करता है। साधारणतया कथा को रेडियो प्रसार के समय के अनुकूल बनाने के लिए मूल रूपक में काट-छांट की जाती है। लेखक उन अंशों का निकास करता है जो या तो मूल कथा के विकास में सहायक नहीं होते हैं अथवा वे केवल अन्तर्कथा के रूप में मूल कथा में विद्यमान होते हैं। ऐसा करने में नाटक की मूल कथा विकृत नहीं होनी चाहिये। प्रत्येक नाटक में प्रायः ऐसे अंश होते हैं जिन्हें रूपान्तरकार निकाल सकता है।

नाटक में काट-छांट की जाती है। उन कटे हुए अंशों के स्थान पर कथा विकास सूत्र का प्रयोग हो सकता है। पर लेखक प्रसारक के शब्दों में संक्षेप में छूटे हुए कथा-स्थलों का प्रकट कर सकता है।

मूल नाटक में जो काट-छांट की जाती है वह प्रायः नाटक के आरम्भ में ही की जाती है। आरम्भ में काट-छांट उन नाटकों में की जाती है

जिसके शुरू में ही नाटकीय संघर्ष की उत्पत्ति नहीं होती है। रेडियो-रूपक की कथा के प्रारम्भ में संघर्ष की उत्पत्ति के लिए कोई विस्तृत भूमिका आवश्यक नहीं है।

रूपान्तर करते समय यदि प्रसारक का उपयोग अस्वाभाविक और नीरस प्रतीत हो तो रूपान्तरकार नये संवादों की रचना भी कर सकता है। परन्तु यह कार्य अत्यन्त सावधानी का है। नये जोड़े जानेवाले संवाद ऐसे हों जो भाव और भाषा में मूल संवादों से भिन्न प्रतीत न होते हों।

कथा के समान ही रूपान्तरकार आवश्यक होने पर, संवादों के कलेवर में थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर सकता है। मूल रूपक में यदि लम्बे लम्बे संवादों का प्रयोग किया गया हो तो वह उन्हें छोटा भी बना सकता है। परन्तु ऐसा उसी समय किया जाता है कि जब वह सुधार रेडियो रूपान्तर के लिए अनिवार्य हो।

इसी प्रकार मूल रूपक के पात्रों की संख्या में कमी की जाती है। यह न हो कि मूल रचना के लेखक के समान रूपान्तरकार भी पात्रों की एक सेना-सी खड़ी कर दे। रूपान्तरकार भाषा में भी छोटे-बड़े सुधार करता है। रंगमंच के नाटक का रेडियो-रूपान्तर करने के कार्य में लेखक पात्रों की वेशभूषा एवं प्रकाश-व्यवस्था क्रिया-संकेत आदि की पूर्ति करने के लिए ध्वनि प्रभावों संगीत और प्रसारक आदि का समावेश करता है तथा रेडियो-रूपक की प्रधान्य आवश्यकताओं की पूर्ति भी करता है। उस नाटक में रेडियो-रूपक के सभी नियमों का निर्वाह किया जाता है तभी वह रेडियो से प्रसारित किया जा सकता है।

उपन्यास और कहानी

उपन्यास अथवा कहानी का रूपान्तर करने के पूर्व रूपान्तरकार मूल रचना के कथ्य और कथोपकथन का विश्लेषण करता है और उसकी

नाटकीय संभावनाओं का पता लगाता है। फिर वह उस रचना की कथा में एक सम्पन्न कथा-प्रवाह उत्पन्न करने का प्रयत्न करता है।

उपन्यास के रेडियो रूपान्तर में उसके कलेवर को कम करना होता है तो कहानी के रूपान्तर में कभी कभी कुछ बातें जोड़ दी जाती हैं। इन दोनों प्रकार की रचनाओं का रेडियो-रूपान्तर करते समय दो बातों का ध्यान रखना होता है। पहली तो यह कि इन रचनाओं के मुख्य-मुख्य अंशों का पता लगाया जाता है और उनसे एक नाटकीय-कथा का निर्माण किया जाता है। जिन कथा-स्थलों में तीव्र संघर्ष होता है उन्हें चुन लिया जाता है। तब फिर वह नाटकीय कथा संवाद स्वगत-कथन प्रभावक और ध्वनि प्रभावों के रूप में लिपिबद्ध की जाती है। इस काम में मूल रचना के संवादों का अधिक से अधिक उपयोग किया जाता है।

उपन्यास और कहानी के रेडियो-रूपान्तर के सम्बन्ध में दूसरी बात यह है कि रूपान्तरित रचना में रेडियो-रूपक की सभी आवश्यकताओं का समावेश करना परमावश्यक होता है।

रूपान्तरकार और रेडियो

लेखक अपने नाटक कहानी अथवा उपन्यास का रेडियो-रूपान्तर करने में स्वतन्त्र है। अपने रूपान्तर को वह रेडियो-स्टेशन को भेज सकता है। ऐसी रचना का स्वागत भी किया जायगा। इतिहास प्रसिद्ध नाटकों, कहानियों आदि के रेडियो-रूपान्तर किये जा सकते हैं। परन्तु जीवित लेखकों के उपन्यास नाटक आख्यायिका आदि का रेडियो-रूपान्तर करने के पूर्व मूल रचना के लेखक से आज्ञा लेनी आवश्यक होती है। ऐसी रचनाओं का रेडियो-रूपान्तर करने में मूल लेखक और रूपान्तरकार दोनों को पारिश्रमिक प्रदान किया जाता है। इसलिए इस विषय में रचना का रूपान्तर करने के पहले रेडियो-विभाग से पूछताछ कर लेनी वांछनीय है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रंगमंच के नाटक उपन्यास अथवा कहानी का रेडियो रूपान्तर किया जा सकता है। मूल रचना में नाटकीय तत्वों का समावेश किया जाता है और रेडियो-रूपक की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है। ऐसा करने के पहले लेखक की आज्ञा और रेडियो विभाग की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक होता है।

———

"नीम हकीम खतरे जान" की कहावत चरितार्थ कर सकें । यों तो कला साहित्य संस्कृति इतिहास ज्ञान-विज्ञान आदि के क्षेत्र सभी के लिए खुले हुए हैं ।

जो कुछ आप लिखें वह उत्तम और आकर्षक हो । उसमें आपकी अन्तर्दृष्टि और सूक्ष्म विवेचन का आभास मिलना आवश्यक है । उसमें घिसी-घिसाई और सर्वविदित बातों की भरमार मात्र न हो । रेडियो-वार्ता में आपकी ओर से कुछ मौलिक बात कही जाय और विशेष ढंग से कही जाय ।

दो प्रकार के भाषण

रेडियो भाषण के दो भेद किये जा सकते हैं । यह भेद विषय की दृष्टि से माना जा सकता है, उद्देश्य की दृष्टि से भी इस भेद को स्वीकार किया जाता है । एक प्रकार के भाषण में मूलतः श्रोताओं के ज्ञान-विज्ञान पर जोर दिया जाता है तो दूसरे प्रकार के भाषण का उद्देश्य चरित्र-निर्माण करना होता है । एक में वैज्ञानिक दृष्टिकोण है तो दूसरे में दार्शनिक उद्देश्य है । एक का ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्ध है तो दूसरे का सदाचार से । इन दोनों प्रकार के भाषणों का रेडियो-प्रसारण में नियमित रूप से उपयोग किया जाता है । किन्तु इन दोनों के लिए दो भिन्न दृष्टिकोण हैं, उनके निर्माण में दो भिन्न प्रकार के नियमों और निषेधों, भाषा और शैली के विभिन्न सिद्धान्तों का पालन करना पड़ता है ।

रेडियो भाषण

जिन रेडियो-भाषणों का मुख्य लक्ष्य श्रोताओं का ज्ञान-विकास करना होता है उन्हें सूचनात्मक वार्ता (इन्फोरमेटरी टॉक) कहते हैं । सूचनात्मक रेडियो भाषण दो व्यक्तियों के बीच होनेवाली उस वार्ता के समान है जिसमें एक व्यक्ति कुछ कहता और दूसरा उसे सुनता है । वार्ता

के समान होते हुए भी इसमें अति साधारण और सामान्य बात नहीं होती है। उसमें महत्वपूर्ण तथ्यों और सूचनाओं का भी समावेश होता है। इसके साथ ही साथ रेडियो-भाषण चाहे वह किसी श्रेणी का हो उसमें भाव और भावनाओं का भी समावेश करना अपेक्षित है। भाषण में व्यक्त भावों और विचारों में लेखक के व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट लक्षित होती है। उसमें कुछ न कुछ ऐसी विशेषता हो जिसे लेखक अपने मस्तिष्क की उपज कह सके। वह घिसे-पिसाये तथ्यों और तर्कों का संकलन मात्र न हो।

सूचनात्मक भाषण की शैली

सूचनात्मक रेडियो-भाषण में श्रोताओं को किसी विषय के सम्बन्ध में तथ्यों और विचारों का ज्ञान प्रदान किया जाता है। विचारों और तथ्यों को प्रकट करने का यह कार्य संयत और संक्षिप्त ढंग से सम्पन्न होता है। किसी बात को घुमा-फिराकर अभिव्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है। उसमें सरल और स्पष्ट भाषा का प्रयोग करना आवश्यक है।

गूढ़ सिद्धान्तों और तथ्यों को भी सरल और व्यावहारिक ढंग से प्रकट करने में वार्ताकार की सफलता है। लेखक गूढ़ सिद्धान्तों को समझाने के लिए उदाहरणों का सहारा ले सकते हैं। छोटी छोटी कथाएं कहकर वह अपनी बात को प्रभावकारी ढंग से स्पष्ट कर सकता है। "ऋण" की व्याख्या करते हुए एक बार डा० पट्टाभि सीतारामैया ने ऑल इण्डिया रेडियो के दिल्ली केन्द्र से प्रसारित अपने भाषण में इसी सिद्धान्त का प्रयोग करते हुए कहा 'लेकिन मत क्षणिक क्या है? जब मैं गत शताब्दी के अन्तिम दशक में दसवीं कक्षा में पढ़ता था तो एक प्रौढ़ विधवा गृहस्वामिनी का लड़का रोज यह देखकर मारा करता था कि उसे इस विषय में इतने अंक मिले उसमें इतने मिले। एक दिन उस महिला ने उसके बालों का गुच्छा पकड़ कर झाड़ू से पीटते हुए पूछा तू एक भी दिन इस सब अंकों का घर क्यों नहीं लाता? इसी प्रकार न सब लोग भी जिन्हें सार्वजनिक

सभाओं में यह कह कर फुसलाया जाता है कि भारत लोकतन्त्र है और भारतीयों का समस्त मताधिकार है एक दिन इन सामाजिक वक्ताओं के कान या गर्दन पकड़ कर यह पूछ सकते हैं कि व मत कहाँ है उनका माप तौल क्या है ? वस्तुतः वे असंख्य हैं ।

ज्ञात से अज्ञात ज्ञान को

भाषा और विषय विस्तार की दृष्टि से सूचनात्मक भाषण सभिप्त होते हुए भी नीरस नहीं होते । वे श्रोताओं की जिज्ञासा को जगाते हैं । भाषण में वस्तु व्यक्ति अथवा सिद्धान्त का जो ब्यौरा और विवरण दिया जाता है वह उनके लिए अर्द्ध-ज्ञात और अर्द्ध अज्ञात होता है। अतः उन्हें ज्ञात से अज्ञात ज्ञान की ओर ले जाता है । तब फिर आगामी भाषण सुनने के लिए उत्सुक भी पाये हैं । वे आश्चर्य के साथ यह सोचते हैं, "ओह यह तो नयी बात है ! इस भाषण को और आगे सुना जाय ।" इस कार्य में एक बात की सावधानी रखनी होती है । वस्तु व्यक्ति, समाज संसार और विश्व के विषय में ऐसी बातें प्रकट न करनी चाहियें जो अधिकांश श्रोताओं के लिए बिल्कुल पुरानी अथवा बिल्कुल नयी हों ।

तर्कों की भरमार नहीं

किसी सिद्धान्त अथवा विचार की पुष्टि के लिए लेखक तर्क देता है । रेडियो-वार्ता में लेखक को प्रत्येक निष्कर्ष के लिए तर्क प्रस्तुत नहीं करने चाहिए । ऐसा न हो कि आपकी रचना तर्क की बहुलता से तर्कशास्त्र की पाठ्य पुस्तक का परिच्छेद ही बन जाय । अनेक स्थानों पर आप द्वारा प्रस्तुत विचारों की पुष्टि का भार श्रोताओं की बुद्धि पर छोड़ देना उचित है । यही बात चरित्र-निर्माण करनेवाले आदर्शात्मक भाषण के विषय में भी लागू होती है ।

और मित्र के दृष्टिकोण में अन्तर है। एक उपदेश देता है, दूसरा सुझाव रखता है। एक आज्ञा देता है दूसरा सम्मति देता है। एक श्रोता से अपने को बड़ा समझता है तो दूसरा अपने को उसके समान ही मानता है। मित्र के दृष्टिकोण से आदर्श प्रकट करने पर श्रोता उन्हें सरलता से स्वीकार कर लेते हैं।

उदाहरण से आदर्श

रचना में अभिव्यक्त सिद्धान्तों और आदर्शों को ग्राह्य बनाने का एक उपाय और है। वक्ता यह आदर्श उपस्थित करना चाहता है कि नागरिकों का सड़क पर बायें हाथ की ओर चलना आवश्यक है। इस आदर्श-स्थापना के पूर्व वह श्रोताओं को अनेक ऐसी आकर्षक घटनाओं और अनुभवों का ब्यौरा प्रस्तुत करेगा जिनमें ठीक दिशा से चलने पर लाभ के होने और गलत दिशा पर चलने से हानि होने की बातें देखी गयी हों। वह ऐसी कतिपय छोटी छोटी कथाओं के उदाहरण देता है। फिर ऐसे उदाहरणों को सुन-सुन कर श्रोताओं के मन में उपचेतन रूप से स्वतः ही सड़क पर ठीक दिशा की ओर चलने का आदर्श अंकित हो जाता है। इन विभिन्न उदाहरणों से वह स्वयं भी सिद्धान्त अथवा आदर्श की स्थापना कर सकता है। इस प्रणाली को निगमनात्मक तर्क प्रणाली के नाम से पुकारा जाता है।

स्थायी भावों का उपयोग

प्रत्येक व्यक्ति में अनेक व्यक्तियों, वस्तुओं और गुणों के प्रति श्रद्धा और प्रेम के भाव होते हैं। बालक अपनी मां अथवा पिता के प्रति ऐसे ही भाव रखता है। धर्म और कर्म के प्रति भी ऐसे भाव हो सकते हैं। श्रोताओं के लिए किसी आदर्श को आकर्षक और ग्राह्य बनाने के लिए वक्ता इन भावों की भी अपील कर सकता है। धर्म के नाम पर ऐसा

लिया भी गया है। चतुर लेखक इस सांस्कृतिक परम्परा तथा विश्वास और राष्ट्र प्रेम उपयोग भी कर सकता है। पौराणिक गाथाओं से भी सहायता ली जा सकती है।

प्रथम पुरुष का प्रयोग

किसी प्रकार के भाषण को प्रथम पुरुष में लिखकर उसे प्रभावोत्पादक बनाया जा सकता है। 'मेरे संस्मरण' "मेरे अनुभव" "मेरी कहानी" और "इतिवृत्त" के रूप में प्रकट होने पर श्रोताओं के लिए ये भाषण और भी अधिक आकर्षक और ग्राह्य बन जाते हैं। मनुष्य स्वभाव से ही दूसरे लोगों के जीवन में रुचि रखता है। अतः उसके अनुभवों में उतरने और उभरने वाला आदर्श सुननेवालों के आचार-विचार को प्रभावित कर देता है।

प्रथम पुरुष में भाषण को न लिखकर भी वक्ता उसमें यथावश्यक अपने अनुभवों का उपयोग कर सकता है। वह ऐतिहासिक प्रणाली पर विषय का प्रतिपादन करता है विषय की व्याख्या के बीच बीच में वक्ता अपने और अन्य लोगों के अनुभवों का हवाला दे सकता है। संक्षेप में सांस्कृतिक रेडियो-भाषण में आदर्शों को इस ढंग से प्रकट करना चाहिए कि श्रोतागण उसे ग्रहण करें उसे अपने चरित्र का अंग बनाने को उद्यत हो जायें।

रेडियो भाषण का समय

आज प्रत्येक रेडियो रचना का समय निश्चित होता है। उस निश्चित समय में समाप्त होने वाली रचना ही रेडियो स्टेशन को भेजनी चाहिये। रेडियो भाषण साधारणतया पाँच से पन्द्रह मिनट के समय का होता है। किसी रेडियो स्टेशन को रचना भेजने के पूर्व रचना के

इस समय का पता लगा लेना उचित है। यहाँ से प्राय कितने मिनट के भाषण प्रसारित होते हैं यह जानने को रेडियो के प्रोग्रामपत्र का उपयोग किया जा सकता है। आल इंडिया रेडियो से अक्सर पन्द्रह मिनिट के भाषण प्रसारित किए जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रेडियो भाषण का विषय रेडियो की आवश्यकताओं के अनुकूल होता है। सूचनात्मक भाषण सरस सरल और संक्षिप्त होता है तो आदर्शात्मक भाषण को ग्राह्य बनाया जाता है। शैली की दृष्टि से दोनों भाषणों को इस कसौटी पर खरा उतरना होगा "क्या मै वास्तव मे इस ढंग से बात करता हूं ?" उनमें न तो तर्कों की भरमार होती है और न सीधे उपदेश। यदि लेखक इन सिद्धान्तों और प्रतिबन्धों को जानता है तो रेडियो वार्ता की रचना में वह अवश्य सफल होगा।

भेंट

रेडियो पर कभी कभी किसी व्यक्ति से किसी विषय पर भेंट भी की जाती है। इसमें एक भेंट करनेवाले उस व्यक्ति से प्रश्न पूछता है जिससे भेंट की जाती है और वह उन प्रश्नों के उत्तर देता है। भेंट के प्रश्न और उत्तर माइक्रोफोन पर बोलने के पूर्व प्रायः पहिले से लिख लिये जाते हैं। एक बार प्रश्न और उत्तर लिपिबद्ध कर लेने के पश्चात् माइक्रोफोन के सामने उस कृति में भेंट का सा अभिनय किया जाता है।

साधारणतया भेंट का कार्यक्रम रेडियो–विभाग के अधिकारियों द्वारा संचालित होता है। स्वतन्त्र रूप से लेखकों को ऐसा प्रोग्राम तैयार करने के पूर्व रेडियो–विभाग से बात–चीत कर लेनी होती है।

भेंट में प्रश्नकर्ता की शंकाएं, उत्सुकता बीच–बीच में उत्तरदाता की बात अटकना और स्पष्टीकरण की आकांक्षा का समावेश होना आवश्यक है। ऐसा करने से उस भेंट में स्वाभाविकता आ जाती है। भेंट को स्वाभाविकता के गुणों से परिपूर्ण करने के लिए कभी कभी भेंट को बिना पूर्व लिखे ही माइक्रोफोन के सामने यथातथ्य रूप में प्रसारित कर दिया जाता है। ऐसी दशा में उसका रेकार्ड पहिले ही तैयार किया जा सकता है। उत्तरदाता अपने वक्तव्यों की पुष्टि के लिए तर्क और उदाहरण देता है अपना अनुभव का हवाला देता है और विद्वानों के विचारों को उद्धृत करता है।

एक भेंट की सफलता इसमें है कि उसमें प्रश्नकर्ता और उत्तरदाता दोनों के व्यक्तित्व की झलक दिखाई दे। ऐसा प्रतीत न हो कि प्रश्न और उत्तर के पीछे किसी एक ही व्यक्ति का मस्तिष्क कार्य कर रहा है, एक ही व्यक्तित्व है। भेंट का प्रश्नकर्ता और उत्तरदाता स्वयं ही प्रसारित करते हैं।

भेंट के प्रश्न और उत्तर स्वाभाविक बोलचाल की भाषा में लिखे जाते हैं। भाषा शास्त्रीय नहीं होती। एक आदर्श भेंट में पाण्डित्य प्रदर्शन का अभाव होता है।

भेंट आत्मानुभव और व्यक्तित्व के धरातल पर एक विशिष्ट कार्यक्रम है। इसका विषय सर्वप्रिय और महत्त्व का होता है। इसका उद्देश्य किसी विषय का प्रतिपादन करना होता है।

विवाद

जब किसी विषय पर माइक्रोफोन के सम्मुख बैठकर दो से अधिक व्यक्ति विचार करते हैं तो उसे विवाद कहते हैं। विवाद में किसी विवादास्पद विषय पर तीन चार विद्वान विचार-विमर्श करते हैं। यह कार्यक्रम रेडियो-विभाग अथवा संस्थाओं की ओर से तैयार किया जाता है। प्रायः इस प्रकार के कार्यक्रम का विभागीय और विभाग के बाहर के लोगों का एक मण्डल आयोजन करता है। इस मंडल का एक सम्पादक होता है जो भाग लेने वाले सभी व्यक्तियों के विचारों का संग्रह और सम्पादन करता है। ऐसा करने में वह सम्बन्धित लोगों से परामर्श करता रहता है।

फ़ीचर

फ़ीचर एक नाटकनुमा रचना है। इसमें दो अथवा तीन प्रसारक भाग लेते हैं अथवा किसी विषय पर प्रकाश डालते हैं। इन में प्रत्येक प्रसारक एक के बाद एक करके अपने से पहले प्रसारक के मुँह से उच्चारित वाक्य के अर्थ को लेकर अपनी बात कह देता है और इस प्रकार घटनाक्रम या विचार-विवेचन आगे को अग्रसर होता जाता है। प्रसारकों के वाक्य व्यापार का कार्य करते हैं, यथा

प्रथम प्रसारक   बापू देश के जीवन के प्रतीक थे।

द्वितीय प्रसारक	बापू ने देश को राजनीतिक जीवन प्रदान किया
तृतीय प्रसारक	बापू ने देश की काया पलट करदी
प्रथम प्रसारक	सन् १९१४ से १९२१ तक
द्वितीय प्रसारक	सन् १९२१ से १९४२ तक
तृतीय प्रसारक	सन् १९४२ से १९४७ तक
प्रथम प्रसारक	उन्होंने विदेशी सत्ता का विरोध किया
द्वितीय प्रसारक	उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन को जन्म दिया
तृतीय प्रसारक	उन्होंने "करो या मरो" की आवाज से विदेशी साम्राज्य को नष्ट किया

इस प्रकार तीन प्रसारक पेजेंट की कथा को विषय के चरमोत्कर्ष की ओर अग्रसर कर लेजाते है। चरम बिन्दु की ओर अग्रसर होने वाली इस गति का निर्देश वक्ता अपनी क्षण प्रति क्षण तेज होती हुई वाणी के द्वारा भी करता है। प्रथम प्रसारक अपने कथन को साधारण सी पर सजीव आवाज म बोलता है। दूसरा प्रसारक प्रथम प्रसारक की आवाज से कुछ अधिक जोर की आवाज मे बोलता है और तीसरे प्रसारक की आवाज दूसरे प्रसारक की आवाज म भी जोर की होती है। इन प्रसारको के कथन के प्रयोग से श्रोताओ क मस्तिष्क म गड़बड़ी उत्पन्न नहीं होनी चाहिए। उनके कथनो में भिन्न भिन्न विचार व्यक्त किये जाते है। प्राय प्रत्येक कथन का विचार पेजेंट की कथा को निश्चित रूप से आगे की ओर लेजाता है। ऐसा होने पर दो कथनो में गड़बड़ी भी नही होती है और कथा प्रवाह में तीव्रगति उत्पन्न हो जाती है।

पेजेंट का विषय

पेजेंट के द्वारा किसी गम्भीर विषय का प्रतिपादन करना सम्भव नही है। इसका विषय प्राय भावात्मक होता है अर्थात् ऐसा विषय जिसमें श्रोताओ के भावों को उभाड़ने की शक्ति होती है। इसके लिए एसा

व्यक्ति अथवा घटना उपयुक्त विषय बन सकता है जो श्रोताओं के लिए श्रद्धा प्रेम दया अथवा घृणा का केन्द्र हो। ऐतिहासिक घटनाओं और महान पुरुषों की जीवन-गाथाओं पर रमणीय और प्रभावोत्पादक पैजेंट लिखे जा सकते हैं।

पैजेंट का विषय भावात्मक ही हो यह आवश्यक नहीं है। पैजेंट का विषय सूचनात्मक भी हो सकता है। वह इतिहास की घटनाओं को भी प्रकट कर सकता है।

पैजेंट के विभेद

पैजेंट के अनेक रूप हैं। प्रतिभा सम्पन्न लेखक विविध और विभिन्न रूप के पैजेंटों की रचना करते हैं। किसी पैजेंट में प्रसारक एक एक वाक्य ही बोलते हैं तो किसी में एक से अधिक वाक्य। भावात्मक पैजेंट के लिए एक वाक्य का प्रयोग उचित है तो सूचनात्मक के लिए एक से अधिक वाक्य अपेक्षित हैं। एक दूसरे प्रकार के पैजेंट में केवल तीन प्रसारक ही किसी घटना व्यक्ति अथवा विषय पर प्रकाश डालते हैं। काश्मीर के श्रीनगर रेडियो स्टेशन से काश्मीर की समस्या पर "जवाबी हमला" शीर्षक से ऐसे ही पैजेंट प्रसारित किये जाते थे। एक अन्य प्रकार के के पैजेंट में प्रसारकों के साथ साथ कतिपय पात्रों का भी समावेश कर लिया जाता है। ये पत्र अथवा सम्वाद पढ़ते हैं और इसके फल स्वरूप कथा आगे की ओर अग्रसर हो जाती है। प्रसारक प्रसंगों के अनुसार उन पत्रों अथवा सम्वादों की ओर संकेत कर देते हैं और पात्र आवश्यकता के अनुसार उनका पाठ करते हैं। कभी कभी पैजेंट की पृष्ठभूमि में संगीत और ध्वनि-प्रभावों का समावेश भी कर दिया जाता है।

भाषा

पैजेंट का प्रत्येक वाक्य श्रोताओं को स्पष्ट होना अपेक्षित है। इसका प्रत्येक वाक्य प्रभावोत्पादक होता है। उसमें श्रोता को हिला देने की

घटित होती है । पेजेंट की प्रत्येक झाँकी को उच्चारण करके इस कमेंट्री पर पर्याप्त ज़ोर देनी चाहिये । पेजेंट में चमत्कारपूर्ण वाक्यों का प्रभ सा रंग आता है । तभी यह पेजेंट सजीव कार्यक्रम बन सकता है ।

प्रसिद्ध मुकदमें

विवरण कार्यक्रम में कभी कभी प्रसिद्ध मुकदमें भी प्रसारित किये जाते हैं । प्रसिद्ध मुकदमों के कार्यक्रम लिपिबद्ध करने के पूर्व रेडियो विभाग से यह जानकारी प्राप्त कर लेनी आवश्यक है कि वहाँ से अमुक मुकदमें का रेडियो-रूपान्तर प्रसारित किया जा सकेगा अथवा नहीं । वहाँ से संतोषजनक उत्तर मिलने पर ही रचना तैयार करनी चाहिये ।

सबसे पहिले लेखक उस मुकदमे से सम्बन्धित साहित्य का पूर्ण अध्ययन कर लेता है । इस अध्ययन के फलस्वरूप लेखक के मानस-पटल पर उस मुकदमे का सजीव और सम्पूर्ण चित्र बन जाता है । मुकदमें के कथा वस्तु में गति का समावेश के लिए प्रसारक का उपयोग किया जा सकता है । प्रसारक मुकदमे की परिस्थितियों की व्याख्या अथवा पात्रों का परिचय भी दे सकता है ।

मुकदमें में पात्रों की संख्या आवश्यकता से अधिक नहीं रखनी चाहिये, यह न हो कि गवाहों की एक सेना सी खड़ी करदी जाय ।

इसी प्रकार थोड़ा बहुत भेद करके अन्य प्रकार के विविध कार्यक्रमों का भी निर्माण किया जा सकता है । कार्यक्रमों को अभिनव ढंग से प्रस्तुत करने का आविष्कार किया जा सकता है ।

रेडियो से कैसे बोलें और गायें

"जनवरी १९४८ का सुहावना प्रातः काल था। मैं लाहौर की ११ एम्प्रेस रोड पर स्थित स्वर्गीय सर फ़ाज़िले हुसैन के विशाल प्रासाद की ओर जहाँ आजकल स्थानीय रेडियो पाकिस्तान का स्टूडियो और दफ़्तर है बढ़ा चला जा रहा था अपनी ही उधेड़बुन में मस्त। मेरे मस्तिष्क की विचित्र अवस्था थी। उसमें कुछ हर्ष मिश्रित उत्कंठा और कुछ अज्ञात भय की भावना का अजीब सम्मिश्रण था। इस सबका कारण वह पत्र था जो स्टेशन डाइरेक्टर की ओर से मुझे रेडियो पाकिस्तान के स्टूडियो में किसी भी कार्यक्रम के दिन ११ से १२ बजे दोपहर के बीच "स्वर परीक्षा' के लिए आमंत्रण के रूप में भेजा गया था।

"मैं एक विश्व विद्यालय का विद्यार्थी था जैसा कि अब भी हूँ। कुछ दिनों पहले हमारी कॉलेज पत्रिका 'रावी' में एक सूचना प्रकाशित हुई थी कि रेडियो पाकिस्तान लाहौर ने विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए एक पाक्षिक कार्यक्रम आरम्भ किया है। सूचना में यह भी कहा गया था कि जो छात्र "यूनिवर्सिटी मैगज़िन" जैसा कि इस कार्यक्रम का नाम था में भाग लेना चाहें व स्टेशन डाइरेक्टर से पत्र व्यवहार करें। इस सूचना ने मुझे उक्त अधिकारी को सादर और विनीत प्रार्थना-पत्र भेजने को उत्साहित किया जिसके उत्तर में ही मुझे स्वर-परीक्षा के लिए बुलाया गया था। यद्यपि तब तक मैं स्वर-परीक्षा के विषय में कुछ भी न जानता था। मुझे आश्चर्य हो रहा था यह परीक्षा कैसी होगी। सम्भवतः वे मुझ से ठुमरी गाने को कहें या आरती या इसी प्रकार का कोई अन्य वाद्य-यंत्र बजाने को कहें। नहीं यह तो संगीत के कलाकारों की परीक्षा होगी किन्तु मैं कलाकार नहीं हूँ। हो सकता है वे लिखित परीक्षा लें पर वह कैसी होगी? मेरे बी॰ए॰ के अर्थ-शास्त्र के अध्ययन से तो अधिक कठिन नहीं हो सकती। और यदि उन्होंने लाहौर रेडियो के मेक-अप के विषय में प्रश्न किया तो? मैंने अपने आप को मन ही

प्रसारित होती है। पेजेंट की प्रत्येक पंक्ति को लयधारण करके इस कसौटी पर परीक्षा कर लेनी चाहिये। पेजेंट में चमत्कारपूर्ण वाक्यों का भ्रम सा बंध जाता है। तभी यह पेजेंट सजीव कार्यक्रम बन सकता है।

प्रसिद्ध मुकदमे

विभिन्न कार्यक्रम में कभी कभी प्रसिद्ध मुकदमे भी प्रसारित किए जाते हैं। प्रसिद्ध मुकदमों के कार्यक्रम लिपिबद्ध करने के पूर्व रेडियो विभाग से यह जानकारी प्राप्त कर लेनी आवश्यक है कि वहाँ से अमुक मुकदमे का रेडियो-रूपान्तर प्रसारित किया जा सकेगा अथवा नहीं। वहाँ से संतोषजनक उत्तर मिलने पर ही रचना तैयार करनी उचित-संगत है।

सबसे पहिले लेखक इन मुकदमों से सम्बन्धित साहित्य का पूर्ण अध्ययन कर लेता है। इस अध्ययन के फलस्वरूप लेखक के मानस-पटल पर उस मुकदमे का सजीव और सम्पूर्ण चित्र बन जाता है। मुकदमे में कथा-वस्तु में गति का समावेश के लिए प्रसारक का उपयोग किया जा सकता है। प्रसारक मुकदमे की परिस्थितियों की व्याख्या अथवा पात्रों का परिचय भी दे सकता है।

मुकदमे में पात्रों की संख्या आवश्यकता से अधिक नहीं रखनी चाहिये, यह न हो कि गवाहों की एक सेना सी खड़ी करदी जाय।

इसी प्रकार थोड़ा बहुत भेद करके अन्य प्रकार के विविध कार्यक्रमों का भी निर्माण किया जा सकता है। कार्यक्रमों को अभिनव ढंग से प्रस्तुत करने का आविष्कार किया जा सकता है।

रेडियो से कैसे बोलें और गायें

"जनवरी १९४८ का सुहावना प्रातःकाल था। मैं लाहौर की ११ एम्प्रेस रोड पर स्थित स्वर्गीय सर फ़ाज़िल हुसैन के विशाल प्रासाद की ओर जहाँ आजकल स्थानीय रेडियो पाकिस्तान का स्टूडियो और दफ़्तर है बढ़ा चला जा रहा था अपनी ही उधेड़बुन में मस्त। मेरे मस्तिष्क की विचित्र अवस्था थी। उसमें कुछ हर्ष मिश्रित उत्कंठा और कुछ अज्ञात भय की आशंका का अजीब सम्मिश्रण था। इस सबका कारण वह पत्र था जो स्टेशन डाइरेक्टर की ओर से मुझे रेडियो पाकिस्तान के स्टूडियो में किसी भी कार्यक्रम के दिन ११ से १२ बजे दोपहर के बीच "स्वर परीक्षा" के लिए आमंत्रण के रूप में भेजा गया था।

"मैं एक विश्व विद्यालय का विद्यार्थी था जैसा कि अब भी हूँ। कुछ दिनों पहले हमारी कॉलेज पत्रिका 'रावी' में एक सूचना प्रकाशित हुई थी कि रेडियो पाकिस्तान लाहौर ने विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए एक पाक्षिक कार्यक्रम आरम्भ किया है। सूचना में यह भी कहा गया था कि जो छात्र "यूनिवर्सिटी मैगज़ीन" जैसा कि उस कार्यक्रम का नाम था में भाग लेना चाहें वे स्टेशन डाइरेक्टर से पत्र व्यवहार करें। इस सूचना ने मुझे उक्त अधिकारी को सादर और विनीत प्रार्थना-पत्र देने को उत्साहित किया जिसके उत्तर में ही मुझे स्वर-परीक्षा के लिए बुलाया गया था। यद्यपि तब तक मैं स्वर-परीक्षा के विषय में कुछ भी न जानता था। मुझे आश्चर्य हो रहा था यह परीक्षा कैसी होगी। सम्भवतः वे मुझ से ठुमरी गाने का कहें या सारंगी या इसी प्रकार का कोई अन्य वाद्य-यन्त्र बजाने का-और नहीं यह तो संगीत के कलाकारों की परीक्षा होगी किन्तु मैं कलाकार नहीं हूँ। हो सकता है वे लिखित परीक्षा लें पर वह कैसी होगी? मेरे बी०ए० के अर्थ-शास्त्र के प्रश्नपत्र से तो अधिक कठिन नहीं हो सकती। और यदि उन्होंने लाहौर रेडियो के सब सैट के विषय में प्रश्न किया तो? मैंने अपने आप को मन ही

धारित होती है। पेजेंट को प्रत्येक मंज़िल की नम्भारन करके इस कसौटी पर परीक्षा कर लेनी चाहिये। पेजेंट में चमत्कारपूर्ण वाक्यों का क्रम आ जाता है। तभी यह पेजेन्ट सजीव कार्यक्रम बन सकता है।

प्रसिद्ध मुकदमे

विशेष कार्यक्रम में कभी कभी प्रसिद्ध मुकदमे भी प्रसारित किये जाते हैं। प्रसिद्ध मुकदमों के कार्यक्रम निर्देशित करने के पूर्व रेडियो विभाग से यह जानकारी प्राप्त कर लेनी आवश्यक है कि कहाँ से अमुक मुकदमे का रेडियो-रूपान्तर प्रसारित किया जा सकेगा अथवा नहीं। वहाँ से संतोषजनक उत्तर मिलने पर ही रचना तैयार करनी उचित होता है।

सबसे पहिले लेखक उस मुकदमे से सम्बन्धित साहित्य का पूर्ण अध्ययन कर लेता है। इस अध्ययन के फलस्वरूप लेखक के मानस-पटल पर उस मुकदमे का सजीव और सम्पूर्ण चित्र बन जाता है। मुकदमे के कथा-वस्तु में गति का समावेश के लिए प्रसारक का उपयोग किया जा सकता है। प्रसारक मुकदमे की परिस्थितियों की व्याख्या अथवा पात्रों का परिचय भी दे सकता है।

मुकदमें में पात्रों की संख्या आवश्यकता से अधिक नहीं रखनी चाहिए, यह न हो कि गवाहों की एक सेना सी खड़ी करदी जाय।

इसी प्रकार थोड़ा बहुत भेद करके अन्य प्रकार के विविध कार्यक्रमों का भी निर्माण किया जा सकता है। कार्यक्रमों को अभिनव ढंग से प्रस्तुत करने का आविष्कार किया जा सकता है।

वार्ता-विचार तथा सार्वजनिक वक्ता के मेरे व्यापक अनुभव मेरे लिए अवश्य सहायक सिद्ध होंगे मैंने अपने मन में सोचा। एक दम लाल बत्ती जली। जल्दी से मैंने अपना मुंह माइक्रोफोन की ओर किया और तेजी से अपने सामने खुली हुई पुस्तक पर नजर डाली। पर मेरी एक विचित्र सी मानसिक अवस्था होगई थी। क्या वास्तव में मेरी दृष्टि धुंधली हो गई थी और मेरे प्राण निकल रहे थे। एक मिनिट के लिए मैं एक भी शब्द नहीं बोल सका। तब मैंने श्री 'म' से मिलती जुलती आवाज सुनी 'तुम पढ़ क्यों नहीं रहे हो? क्या लाल बत्ती नहीं देख रहे हो' उसने कहा। इससे मुझे सहारा मिला। मैंने अपना सहमा बटोरा गला साफ किया थोड़ा लड़खड़ाया और फिर पढ़ना आरम्भ किया। मैं बहुत ही तेज रफ्तार में पढ़ रहा हूं क्योंकि मैंने पुनः श्री 'म' को यह कहते हुए सुना 'होशियार से थोड़ा सा धीरे। यह सोचिये कि माइक्रोफोन आपका दोस्त है और आप उससे बातें कर रहे हैं।

"फिर भी मैंने अपने ढंग को सुधारने की कोशिश की। बिना किसी रोक के मैं पाँच मिनिट तक पढ़ता रहा तब स्टूडियो का दरवाजा खुला और श्री 'म' ने प्रवेश किया। 'बस ठीक है धन्यवाद' उसने कहा। मैंने पढ़ना बन्द कर दिया। श्री 'म' ने मुझ से मेरा पता लिया और मेरे विषय मेरी विशेष रुचि आदि के बारे में पूछा और एक रजिस्टर में उन्हें नोट कर लिया और मुझे घर जाने और इस विषय में सरकारी सूचना के लिए इन्तजार करने के लिए कहा।

"तीन दिन बाद मुझे एक पत्र स्टेशन डाइरेक्टर से प्राप्त हुआ जो मेरे लिए हर्षोल्लास का समाचार लाया था कि मेरा स्वर स्वीकार कर लिया गया है। और जब कभी आवश्यक होगा मुझे प्रोग्रामों में भाग लेने को निमन्त्रित किया जायगा।

मन में सोचा कि जब रेडियो पर घोषणा करनेवाला अपनी रटी रटाई बात को दोहराता था 'रेडियो पाकिस्तान लाहौर की आवाज़ आप—मीटर पर सुन रहे हैं— तब मैंने क्यों न ध्यान पूर्वक सुना। पर अब पश्चाताप से कोई लाभ न था।

"इन विचारों में खोया हुआ मैं एम्प्रेस रोड को पहुंच गया। एक चपरासी ने मुझे दरवाजे पर रोका आप किस से मिलना चाहते हैं साहब मैंने अपने कोट की जेब से पत्र निकाला। उसमें एक वाक्य था पहुंचने पर कृपया श्री.....के लिए पूछें। इसीलिए मैंने चपरासी को इस विषय में सूचित किया। उसने मुझे अपने पास के स्टूल पर पड़े रजिस्टर में अपना नाम और कुछ अन्य तथ्य भरने को कहा। और यह मैंने तुरन्त कर दिया। उसने मुझे फाटक में आने दिया। कुछ मिनट में ही मैं श्री ...जो कि अंग्रेजी मामलों और मुस्लिम लीगी मामलों के इन्चार्ज थे के कमरे में बैठ गया। जैसा कि मेरा अनुमान था उसमें यह बहुत ही चलाक था और एक अधिकारी के पद के लिए काफी योग्य (फाइन) था वह कमरे से बाहर जाने के लिए उठा और मुझे अपने साथ चलने को कहा। कुछ देर बाद मैंने अपने आपको सुन्दर और प्रभाव पूर्ण स्टूडियो नम्बर ४ के माइक्रोफोन के सामने पाया। बाद में मुझे पता चला कि इस स्टूडियो से ही सभी भाषण प्रसारित किये जाते हैं। श्री 'म' के पास एक पुस्तक थी। वह उसने मुझे दी और मुझे उसमें एक अनुच्छेद चुनने और उसे पढ़ने को कहा जब उसने माइक्रोफोन को व्यवस्थित कर लिया तथा ठीक स्टूडियो के ऊपर लगी हुई दो वृत्ताकार वस्तुओं की ओर संकेत करते हुए कहा "जब तुम यहां लाल रोशनी देखो तब पढ़ना शुरू कर देना। तब फिर वह दरवाजे की ओर मुखातिब हुआ और कहा 'मैं जा रहा हूं। मैं तुम्हारी आवाज रेडियो पर सुनूंगा। तुम भी जब कभी आवश्यक होगा मेरी आवाज सुन सकोगे। उसने अपने पीछे दरवाजा बन्द कर दिया और स्टूडियो में केवल मैं अकेला रह गया। यह वही परीक्षा है। बहुत सरल। अब तो

वाद-विवाद तथा सार्वजनिक वक्ता के मेरे व्यापक अनुभव मेरे लिए अवश्य सहायक सिद्ध होंगे मैंने अपने मन में सोचा। एक दम लाल बत्ती जली। जल्दी से मैंने अपना मुंह माइक्रोफोन की ओर किया और तेजी से अपने सामने खुली हुई पुस्तक पर नजर डाली। पर मेरी एक विचित्र ही मानसिक अवस्था हो गई थी। क्या वास्तव में मेरी दृष्टि धुंधली हो गई थी और मेरे प्राण निकल रहे थे। एक मिनिट के लिए मैं एक भी शब्द नहीं बोल सका। तब मन श्री 'म' से मिसर्ती-घुसर्ती आवाज सुनी, 'तुम पढ़ क्यों नहीं रहे हो? क्या लाल बत्ती नहीं देख रहे हो' उसने कहा। इससे मुझे सहारा मिला। मैंने अपना साहस बटोरा, गला साफ किया, थोड़ा खंखारा और फिर पढ़ना प्रारम्भ किया। मैं बहुत ही तेज रफ्तार से पढ़ रहा हूं क्योंकि मैंने पुन श्री 'म' का यह कहते हुए सुना 'होशियार से थोड़ा सा धीरे। यह सोचिये कि माइक्रोफोन आपका दोस्त है और आप उससे बातें कर रहे हैं।

फिर भी मैंने अपने ढंग को सुधारने की कोशिश की। बिना किसी रोक के मैं बीस मिनिट तक पढ़ता रहा तब स्टूडियो का दरवाजा खुला और श्री 'म' ने प्रवेश किया। 'सब ठीक है धन्यवाद' उसने कहा। मैंने पढ़ना बन्द कर दिया। श्री 'म' ने मुझ से मेरा पता, शिक्षा और मेरे विषय मेरी विशेष रुचि आदि के बारे में पूछा और एक रजिस्टर में उन्हें नोट कर लिया और मुझ पर जाने और इस विषय में सरकारी सूचना के लिए इन्तजार करने के लिए कहा।

पन्द्रह दिन बाद मुझे एक पत्र स्टेशन डाइरेक्टर से प्राप्त हुआ जो मेरे लिए हर्षोल्लास का समाचार लाया था कि मेरा स्वर स्वीकार कर लिया गया है। और जब कभी आवश्यक होगा मुझे प्रोग्रामों में भाग लेने का निमंत्रित किया जायगा।

एक सप्ताह बाद मैं १८ एक्सप्रेस रोड की ओर अपना रास्ता तय करता जा रहा था इस बार सचमुच एक प्रोग्राम में भाग लेने के लिए ही। क्या ही हर्ष का विषय है।

सन् १९४८ में मुझे तीन या चार और प्रोग्राम ऐसे मिले जिन्हें रेडियो-संसार में लोग बात-चीत में 'स्वर के कार्यक्रम' कहते हैं।"* निःसंदेह प्राय लोग यह भूल जाते हैं कि लिखित रचनाओं के विपरीत केवल अपनी वाणी के द्वारा भी रेडियो के कार्यक्रमों में भाग लिया जाता है। वाणी का रेडियो-जगत में असाधारण महत्व है। रेडियो कलाकार का आवाज के द्वारा श्रोताओं से जो परिचय होता है वह अधिक स्थाई होता है। जब लेखक का रचना के साथ में केवल नाम ही बोला जाता है तब सुनने वाले कुछ ही समय पश्चात् उसे भूल जाते हैं। अतः जो कलाकार जितना अधिक रेडियो से बोलेगा अथवा गायेगा वह श्रोताओं से उतना ही घनिष्ट सम्बन्ध और सम्पर्क स्थापित कर सकेगा।

वाणी और व्यक्तित्व

मनुष्य की वाणी उसके व्यक्तित्व की परिचायिका होती है। गम्भीर प्रकृति के व्यक्तियों की वाणी को सुनकर चतुर श्रोता तुरन्त बता सकता है कि वक्ता किस प्रकृति का है। किन्तु दैनिक जीवन में वाणी के द्वारा हम वक्ता के इस स्वभाव को जानने में असफल हो जाते हैं। सामान्य जीवन के वार्तालाप में हमारा ध्यान वक्ता की वाणी पर ही नहीं अपितु उसके हाव-भाव मुखाकृति वेशभूषा आदि पर भी लगा रहता है। परन्तु रेडियो-यंत्र से सुनाई देने वाली आवाज के साथ में इन दृश्य बातों का अभाव होता है

---

*रेडियो पाकिस्तान के प्रकाशन "दी इयर ऑफ रेडियो पाकिस्तान" में जनाब मसूद अली नूर विद्यार्थी गवर्नमेंट कालेज लाहौर के उद्गार के

और श्रोता वक्ता की आवाज में निहित व्यक्तित्व और स्वभाव को पहिचान लेता है। फलतः रेडियो में एक बार वाणी के साथ में वक्ता का नाम सुन कर बाद में श्रोतागण उसे दूसरी बार सुनने पर पहिचान जाते हैं कि अमुक जी बोल रहे हैं। जब वाणी का यह महत्व हो आप पूछ सकते हैं कि माइक्रोफोन पर कैसे बोलें और गायें ? क्या वहाँ मंच पर हाथ पाँव पटक पटक कर बोलने वाले वक्ता के समान बोला जाय ? क्या माइक्रोफोन के समीप अपना मुँह लगा कर बोलें और गायें जिसके फलस्वरूप दूर दूर के देशों के लोग सुन सकें ? ऐसे अनेक प्रश्न रेडियो से बोलने वालों और गायकों के मन में उठा करते हैं। इन सभी प्रश्नों का समुचित उत्तर प्राप्त करने के लिए माइक्रोफोन अर्थात् वह यंत्र जिसके सामने बोला जाता है की विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

माइक्रोफोन का माध्यम

माइक्रोफोन वक्ता की आवाज का बड़ी तेज गति से ग्रहण करता है। धीमी से धीमी आवाज भी उसके द्वारा जोर से सुनाई देती है। रचना की पाण्डुलिपि के कागज को यदि लेखक थोड़ी भी असावधानी से उलटे तो रेडियो यंत्र में कागज के मुड़ने की आवाज बड़े जोर से सुनाई देगी। खाँसना, कुर्सी सरकाना और बूट की आवाज तो और भी जोर से सुनाई देती है। वक्ता और गायक के लिए इसमें एक प्रतिबन्ध निकलता है। उसे न तो टेबल पर हाथ पटकने की आवश्यकता है और न जोर-जोर से बोलने अथवा गाने की।

तो फिर माइक्रोफोन के सम्मुख किस तरह से बोला अथवा गाया जाय ? अब भी यह प्रश्न विचारणीय रह जाता है। इसका उत्तर माइक्रोफोन की विशेषताओं से ही प्राप्त किया जा सकता है। रेडियो कलाकार और श्रोता एक दूसरे से हजारों मील दूर होते हुए भी परस्पर अत्यन्त समीप हैं। माइक्रोफोन में वक्ता की आवाज विद्युतधारा का रूप

ग्रहण करके मुख्य यंत्र ट्रान्समीटर में पहुंचती है। ट्रान्समीटर में यह विद्युत-धारा विद्युत चुम्बकीय धारा (इलक्ट्रो मेगनटिक वेव) के रूप में परिवर्तित हो जाती है और यह विद्युत चुम्बकीय धारा इथर धारा की पीठ पर बैठ कर १८६०० मील प्रति सेकिंड के हिसाब से अतिमान होती है। यह कार्य इतनी तेजी के साथ सम्पन्न हो जाता है कि वक्ता या गायक को यही समझना चाहिये कि श्रोता उससे हजारों मील दूर नहीं अपितु उसके सम्मुख ही बैठा हुआ है।

समझदार वक्ता अथवा गायक माइक्रोफोन को मित्र के समान जीवित श्रोता समझ कर ही बोलते अथवा गाते हैं। फिर जब कलाकार माइक्रोफोन रूपी मानव-श्रोता के इतना समीप बैठा हुआ है तो उसको न तो जोर से बोलने की आवश्यकता है और न माइक्रोफोन के बहुत समीप मुंह लेजाने की। वक्ता को यह न समझना चाहिये कि वह किसी सभा भवन में भाषण दे रहा है प्रत्युत वह यह भाव कि वह किसी एक व्यक्ति से कुछ बातें कह रहा है सरलता से व्यक्तिगत रूप से और उसी प्रकार से जैसे वह एक परिचित व्यक्ति से बातें कर रहा हो। चतुर वक्ता बोलते समय असंख्य श्रोताओं का नहीं प्रत्युत इस माइक्रोफोन रूपी श्रोता का ध्यान करता है और सोचता है कि यह मूक-श्रोता उसका वक्तृत्व या गायन बड़े ध्यान धैर्य और रुचि के साथ सुन रहा है।

माइक्रोफोन एक मूक-श्रोता है। इस श्रोता से आप न तो अधिक दूर बैठिये और न उसके अत्यधिक नजदीक ही मुंह लेजाइये। प्रायः कलाकार इससे अठारह इंच से दो फीट तक दूर रहता है। फिर रेडियो के अधिकारी प्रत्येक वक्ता या गायक की वाणी के रूप का ध्यान में रखते हुए उन्हें माइक्रोफोन के दोनों ओर समीप अथवा दूर बैठने का आदेश भी दे सकते हैं। इस प्रकार का आदेश वक्ता की आवाज की आन्तरिक विशेषता और विभिन्नता का ध्यान में रखकर ही दिया जाता है।

आवाज़ के आन्तरिक गुण

अनेक व्यक्तियों की आवाज़ माइक्रोफ़ोन के अनुपयुक्त भी हो सकती है। सच तो यह है कि अनेकों में एक दो व्यक्तियों की आवाज़ ही मधुर होती है। आवाज़ की मधुरता लोच कोमलता और सरसता तो प्रकृति की देन है। इन गुणों को वक्ता अथवा गायक कृत्रिम रूप से उत्पन्न नहीं कर सकता है। तो क्या माइक्रोफ़ोन के सामने बोलने के सिद्धान्तों को जानने से कोई लाभ नहीं है।

वाणी के आन्तरिक तत्वों का विकास नहीं किया जा सकता है। परन्तु फिर भी आवाज़ का रूप कैसा भी क्यों न हो वक्ता अपने बोलने के ढंग को उत्तमतर बनाकर आवाज़ की अन्य कमियों को पूरा कर सकता है। प्रकृति से मिली हुई आवाज़ का कलात्मक दुरुपयोग अथवा सदुपयोग भी कर सकता है। बोलने का ढंग सीखकर वह आवाज़ को आकर्षक रमणीय और प्रभावोत्पादक बना सकता है।

बोलना एक कला

माइक्रोफ़ोन के सामने बोलना या गाना एक कला है। वक्ता साधारण और स्वाभाविक आवाज़ में अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करता है। किन्तु वह इतने धीमे स्वर से नहीं बोलता है कि उसकी आवाज़ निर्जीव और प्रभावशून्य बन जाए। वह भावों के अनुकूल भी अपनी आवाज़ को बनाने का प्रयत्न करता है। संशय विरोध अस्वीकृति आलोचना आदि भावों को व्यक्त करने में आवाज़ का वैसा ही रूप देना अपेक्षित है। तभी बोलने का ढंग सजीव और स्वाभाविक बनता है। नाटक में तो इस सिद्धान्त का बहुत ही उपयोग किया जाता है। पात्रों की मानसिक दशा श्रोता के सामने इस ढंग से स्पष्ट झलकती है। वार्ता प्रसारित करते समय भी कुछ स्थानों पर ज़ोर देकर बोलना कहीं धीमा रखना और

तृतीय खण्ड

रेडियो के विशेष प्रोग्राम

विशेष कार्यक्रम का आयोजन

समझदार लेखक रेडियो-कार्यक्रमों की सभी सम्भावनाओं की ओर जागरूक रहता है। वह रेडियो से प्रसारित सामान्य कार्यक्रम तक ही अपनी दृष्टि सीमित नहीं कर सकता है। वह रेडियो के विशेष कार्यक्रम की ओर भी क्रियाशील रहता है। विशेष कार्यक्रम में एक नहीं अनेक लेखकों विचारकों और संगीतज्ञों की सेवाओं का उपयोग किया जा सकता है, किया जाता है। सामान्य कार्यक्रम में एक सप्ताह में जहाँ एक या दो नाटक ही रखे जाते हैं वहाँ इन विशेष प्रोग्रामों के लिए अनेक रेडियो वार्ताओं की आवश्यकता होती है।

विशेष लोग

रेडियो स्टेशनों से शिक्षा भावना योग्यता प्रकृति और सामाजिक स्तर का ध्यान में रखकर विभिन्न श्रेणी के लोगों के लिए विशेष कार्यक्रम प्रस्तुत किये जाते हैं। एक श्रेणी के सुननेवालों की शिक्षा और मनोरंजन के लिए जो कार्यक्रम उपयुक्त माना जाता है वही कार्यक्रम उससे *भिन्न श्रेणी के श्रोताओं के लिए उपयोगी या क्या हानिकारक भी सिद्ध हो* सकता है। यदि किसी पुरुष को स्त्रियोपयोगी बातें सुनाई जायें और पाँच वर्ष की आयु के बालकों के लिए रामोपाख्यानी साहित्य का कार्यक्रम रखा जाय तो वह उन्हें रुचिकर एवं आकर्षक प्रतीत नहीं होगा — कारण यह है कि पुरुष और स्त्री बालक और प्रौढ़ की प्रवृत्तियों में अन्तर है। सभी आयु और प्रकृति के लोगों का एक ही प्रकार के कार्यक्रम से आनन्दित, उत्साहित और शिक्षित करना असम्भव है।

विशेष क्षेत्र

आजकल जिन श्रोताओं का कामकाज और श्रम सामान्य श्रोताओं के कार्यक्षेत्र और श्रम से भिन्न होते हैं तो उनके लिए भी एक विशेष प्रकार

का प्रोग्राम प्रसारित किया जाता है। विशेष कार्यक्रम में उस श्रेणी के श्रोताओं के लिए समाचार भी विशेष भाषा और विशेष ढंग से प्रसारित किये जाते हैं। भारत में श्रोताओं के आयु भेद कार्य भेद और लिंग-भेद के आधार पर बच्चों स्त्रियों देहात-वासियों औद्योगिक क्षेत्र के श्रमिकों विद्यार्थियों और महिलाओं के लिए विशेष प्रकार के प्रोग्रामों का आयोजन किया जाता है। रेडियो-जगत में विषय वर्गों के श्रोताओं के लिए विशेष प्रकार के कार्यक्रम प्रसारित करने की एक प्रवृत्ति ही चल पड़ी है। भविष्य में अधिकांश कार्यक्रम विशेष श्रोताओं की आवश्यकताओं में आकर सिमट जायगा।

विशेष कार्यक्रम

रेडियो-जगत में विशेष कार्यक्रम की ओर आवश्यक ध्यान न देने के कारण अनेक प्रसारकों को व्यापक सफलता प्राप्त न हो सकी है। वे रेडियो में अपने लिए पूर्ण स्थान नहीं बना सके हैं। सामान्य कार्यक्रम के साथ साथ एक दो विशेष कार्यक्रमों पर भी ध्यान देना उचित है। इसके लिए लेखक इस बात का अध्ययन कर सकता है कि अमुक विशेष कार्यक्रम में किस प्रकार के भाव और भाषा का प्रयोग करना आवश्यक है। उदाहरणार्थ बच्चों के प्रोग्राम में सरल भाषा का प्रयोग अपेक्षित है तो देहाती कार्यक्रम के लिए ग्रामीण बोली का उपयोग आवश्यक है। भाषा की भांति ही प्रत्येक विशेष कार्यक्रम का अपना एक विशिष्ट विषय-क्षेत्र होता है। विषय के चुनाव और प्रतिपादन में लेखक उस कार्यक्रम के श्रोताओं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करता है। श्रोताओं की बुद्धि ज्ञान रुचि-अरुचि भाव-भावनाओं आदि के प्रकाश में उपयुक्त विषय का चुनाव किया जाता है। महिलाएं घर-गृहस्थी का कार्य करती हैं। इस कारण उनके कार्यक्रम में पाकशास्त्र से सम्बन्धित विषयों पर भी प्रकाश डाला जाता है। कौन से विशेष कार्यक्रम के लिए विषय और शैली क्या हो इसका ब्यौरा आगे के परिच्छेद में प्रस्तुत किया जायगा।

विशेष समय

प्रत्येक विशेष कार्यक्रम एक विशेष समय पर प्रसारित किया जाता है । वह ऐसा समय होता है जब उस विशेष श्रेणी के श्रोताओं को रेडियो सुनने का अवकाश होता है । दोपहर में महिलाएं घर-गृहस्थी के काम काज से छुट्टी पाती हैं । उस समय महिलाओं के लिए विशेष कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है । तब अन्य श्रोतागण अपने नौकरी-धन्धे में व्यस्त हुए हैं । इसी प्रकार दोपहर के प्रारम्भ में विद्यार्थियों के लिए विशेष कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है तो गोधूलि के बाद किसानों का कार्यक्रम प्रारम्भ होता है ।

इस प्रकार हम कहते हैं कि रेडियो से विशेष वर्ग के लोगों के लिए विशेष प्रकार के प्रोग्राम प्रसारित किए जाते हैं । इन प्रोग्रामों में विशिष्ट विषय पर विशिष्ट भाषा-शैली में रचना की जाती है ।

देहाती कार्यक्रम

देहात के सम्पूर्ण और स्वस्थ विकास के लिए रेडियो का बड़ा महत्त्व है। भारत में सभी रेडियो-स्टेशनों से देहात वासियों की बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक और आर्थिक उन्नति के लिए विशेष प्रोग्रामों का आयोजन किया जाता है। राज्य सरकार के सहयोग द्वारा इन प्रसारणों की व्यवस्था की जाती है। रेडियो केन्द्र स्थानीय सरकारों के राज्य निर्माणकारी विभागों से निकट का सम्पर्क बनाये रखते हैं तथा कृषि और पशु-पालन, स्वास्थ्य, भोजन-शास्त्र, सफाई, सहकारी व्यापार, आदि से सम्बन्धित-बहुत सी उपयोगी सामग्री प्राप्त करता है। यह सामग्री ऐसे रूप में प्रस्तुत की जाती है जो देहात के लोगों की समझ में सरलता से आ जाय। इस कार्यक्रम का उद्देश्य देहात के साहित्य, नाटक और संगीत कलाओं को भी प्रकट करना है। इस कार्यक्रम से उनका ज्ञान का विकास और चरित्र का निर्माण भी किया जाता है। उन्हें खेती के व्यवसाय में कार्यक्रम भी बनाया जाता है।

विषय का चुनाव

देहात-वासियों के लिए विशिष्ट विषयों पर प्रकाश डाला जाता है। इन विषयों में गांव के लोगों के जीवन और व्यवसाय की झलक होती है। इसमें उनके जीवन की समस्याओं, कठिनाइयों, प्रश्नों और जीवन-व्यवस्था को उन्नत करने वाली बातों का समावेश होता है। इसमें शहरी बातें नहीं होती हैं। इस प्रोग्राम में ऐसा प्रतीत हो कि यह गांव के लोगों का कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम में उनके लिए स्वास्थ्य-विज्ञान पर भी व्यवस्था, भोजन-विज्ञान, सामाजिक सहयोग, आर्थिक विकास, पशुपालन, कृषि-शास्त्र, नागरिकता, निर्वाचन पद्धति, राष्ट्र-प्रेम और सुधार के अन्य विषयों पर रचनाएं तैयार की जा सकती हैं। लेखक ऐसा विषय चुनता है जो समयानुकूल हो, जिसकी उस समय मांग हो। रचना के विषय का चुनाव और उसके प्रतिपादन में यह रचना देहाती लोगों का प्रोग्राम प्रतीत होना चाहिये।

देहाती की भाँति विचार

देहाती प्रोग्राम की रचना के विषय पर एक देहाती की भाँति विचार किया जाता है। उसमें यह बात प्रकट हो कि देहात के लोग किस विषय पर किस प्रकार सोचते हैं, अविश्वास करते हैं और नई बात का विरोध करते हैं। उनके मन में किस प्रकार तर्कों का उदय होता है, किस प्रकार किसी उपयोगी बात को वे सुगम समझ सके हैं, देहाती मन की ऐसी झलक लेखक की रचना में होती है। परन्तु गाँव के निवासियों की विचार-विधि का यथातथ्य चित्र उपस्थित कर देना ही पर्याप्त नहीं है।

व्यावहारिक सुझाव

गाँव के लोगों के लिए रेडियो-लेखक द्रष्टा ही नहीं, स्रष्टा भी है। वह देहात के सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और औद्योगिक जीवन को अपनी रचना में केवल अभिव्यक्त ही नहीं करता है, वह इन बातों में सुधार करने और इनके श्रोताओं के जीवन के हर पहलू के संबंध में उपयोगी बातें भी बताता है। वह सभ्य, संस्कारी और शिक्षित जीवन की झलक भी प्रस्तुत करता है। देहाती श्रोताओं के मनोरंजन के लिए वह प्रचुर सामग्री भी प्रस्तुत करता है।

लेखक उपयोगी और व्यावहारिक सुझाव भी रखता है। ये सुझाव किसानों के जीवन को ऊपर उठाने, आय बढ़ाने के लिए दिये जाते हैं। वे कार्य रूप में परिणत किये जाते हैं। लेखक की रचना में चाहे तो उपज बढ़ाने के सुझाव हों और चाहे पशु-पालन के नियम, चाहे मलेरिया से बचने के उपाय हों और चाहे बाल शिक्षा का महत्व, ये सभी सुझाव व्यावहारिक होने चाहिये। उदाहरण के रूप में ट्रैक्टर के कल पुर्जों को कैसे ठीक किया जाय, इस विषय पर एक वार्ता अथवा संवाद तैयार किया जा सकता है। परन्तु यदि गाँवों में ट्रैक्टर का प्रयोग और प्रचलन ही न हो तो इस प्रकार की बातें क्या महत्व रख सकती हैं। वह उपयोगी रचना

नहीं बन सकती है । अत लेखक वही बातें प्रकट करता है जो देहात के जीवन में कार्यरूप में परिणत की जा सके ।

कार्य के लिए स्वयं उद्यत हों

देहाती प्रोग्राम में देहात के जीवन की आवश्यक और उपयोगी बातों का निर्देश कर देना ही पर्याप्त नहीं है । उस रचना में ऐसी बातों का भी समावेश किया जाता है जिन्हें सुन कर श्रोता स्वयं सुधार करने और सुझावों को अपने जीवन में उतारने के लिए उद्यत हो जायें । उसमें ऐसी बातें होती हैं जो किसानों के हृदय को छूने की शक्ति रखती है ।

देहात-वासियों का धार्मिक विश्वास बड़ा गहरा होता है । समझदार लेखक उनके धार्मिक विश्वास के द्वारा उनमें सुधार करने तथा कोई कार्य करने अथवा न करने की इच्छा उत्पन्न कर सकता है । वह अपनी कथाओं धार्मिक कहानियों और धर्मग्रंथों के वाक्यों का हवाला दे सकता है । ये बातें किसानों के जीवन में बड़ा महत्व रखती हैं ।

धार्मिक लाभ भी देहातवासियों के लिए एक बड़ा आकर्षण है । लेखक अपनी रचना में धार्मिक प्रयोजन का भी समावेश कर सकता है । रचना में ऐसी बातें हों जिनको सुनकर श्रोता यह अनुभव करे कि उनका पालन करने से गांव के लोगों का धार्मिक कल्याण हो सकता है । देहाती कार्यक्रम श्रोताओं की प्रकृति और रुचि के अनुकूल होने के साथ ही साथ मनोरंजक प्रमाण और सरल होना चाहिए ।

किसान का मन

किसान का मन कोई साफ कागज नहीं जिस पर जो जी चाहे अंकित कर दिया जाय । उसके मस्तिष्क में तो ईश्वर से लेकर बैल की बीमारी तक के लिए अपनी विशेष धारणाएँ होती हैं । किसान की अपनी एक

छोटी सी दुनिया है । इसमें वह जो कुछ देखता सुनता और समझता है वही अनुभव उसको धारणाओं विश्वासों और आदर्शों का रूप ग्रहण कर लेता है । वह इन्हीं विश्वासों और आदर्शों के प्रकाश में संसार की सभी बातों की परीक्षा करता है । ऐसी दशा में देहात के श्रोता उन उपयोगी और उत्तम सिद्धान्तों का भी स्वीकार करने में उत्साह नहीं दिखाते जो उनकी धारणाओं, विश्वासों और आदर्शों से मेल नहीं पाते हैं ।

कृषक-मन एक शुद्ध तार्किक की भांति नहीं अपितु अपने अनुभव के आधार पर कोई बात स्वीकार करता और सीखता है । लेखक उसे जो कुछ सिखाना-समझाना चाहता है उसे किसान के अनुभव के धरातल पर प्रस्तुत करना होता है । उसके लिए कहने से करना अच्छा है । उसे कोई कोरे सिद्धान्त और नियम न बताये जायें । सफल उदाहरणों और यथार्थ घटनाओं के पद-प्रभाव में कृषक-श्रोताओं का उपयोगी कार्यों और कर्त्तव्यों में विश्वास उत्पन्न कर सकता है । वह अपनी रचना में ऐसे उदाहरणों और घटनाओं के एक नहीं अनेक उदाहरण देता है ।

"उपदेशक नहीं"

लेखक गांव-वासियों को बहुश्रुत बनाता है। उनका चरित्र-विकास करता है । परन्तु इस कार्य में उसे उपदेशक नहीं बनना चाहिये । यह न हो कि वह सिद्धान्तों की झड़ी ही लगादे, "यह करो यह न करो यह किया जाय और यह यों न किया जाय" कारण यह है कि इस रीति से लिख गये उपदेश यह स्वीकार नहीं करेगा उन्हें अपने जीवन में नहीं उतारेगा। आदर्श अथवा अपने संदेश को यथार्थ घटनाओं और वास्तविक कथाओं के द्वारा प्रत्यक्ष रूप में व्यक्त करना लाभप्रद होता है ।

इन रचनाओं में ऐसी बातों का भी समावेश नहीं होता है जो देहात-वासियों के मूल धारणाओं, धार्मिक विश्वासों और सांस्कृतिक जीवन के

नहीं बन सकती है । अत लेखक वही बातें
जीवन में कार्यरूप में परिणत की जा स

प्रय के लिए स्वयं उद्यत हों

देहाती प्रोग्राम में देहात के जीवन की
का निरोध कर देना ही पर्याप्त नहीं है । ए
समावेश किया जाता है जिन्हें सुन कर
सुभावों को अपने जीवन में उतारने के लि
बातें होती हैं जो किसानों के हृदय का

देहात-वासियों का धार्मिक विश्वास
लेखक उनके धार्मिक विश्वास के द्वारा
करने अथवा न करने की इच्छा उत्पन्न
कथाओं धार्मिक कहानियों और धमग
है । ये बातें किसानों के जीवन में ब

धार्मिक नाम भी देहातवासियों
लेखक अपनी रचना में धार्मिक धार
रचना में ऐसी बातें हों जिनका सुभ
पालन करने से गांव क लोगों का
कार्य क्रम योजनाओं की प्रकृति और
मनोरंजक सजीव और सरल हो

किसान का मन

किसान का मन कोई सात
कर दिया जाय । उसके मस्ति
तक के लिए अपनी विशेष भाव

उपयुक्त रचना नहीं बन सकेगी जब वह देहाती भाषा में लिखी गयी हो। यद्यपि रचना में देहाती भाषा का उपयोग अनिवार्य है तथापि देहाती भाषा के प्रयोग मात्र से कोई रचना देहाती कार्यक्रम के अनुकूल नहीं मानी जा सकती है। देहाती कार्यक्रम के लिए लिखी जानेवाली रचना में देहाती भाव और भाषा का संयोग होता है।

देहाती भाषा में अस्वाभाविक शहरीपन नहीं होता है। उसमें देहातीपन होता है। उसमें उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया जाय जो देहात के लोग साधारणतया बोला करते हैं। सफल लेखक अपनी रचना में कहीं कहीं यह बतलाता है कि किस प्रकार शहरी और अंग्रेजी शब्दों को देहात के लोग बिगाड़कर बोलते हैं। यथा राजस्थान के एक भू-भाग की देहात की बोली में स्टेशन को 'टेशण' और मनुष्य का 'मिनख' कहा करते हैं।

देहाती भाषा अथवा बोली के समुचित प्रयोग के लिए लेखक वाक्य-विन्यास की ओर भी ध्यान देता है। देहाती के लोग छोटे और सरल वाक्यों का उपयोग करते हैं। विद्वानों और पण्डितों के समान वे जटिल और साहित्यिक वाक्यों का प्रयोग नहीं करते। ग्रामीणों के सरल मस्तिष्क से तो सरल वाक्यों की ही उत्पत्ति होती है। देहात में संतुलित साहित्यिक संयत और शास्त्रीय वाक्यों का प्रयोग प्रायः नहीं किया जाता है। इन वाक्यों में कृत्रिमता और एक उत्पादित भाषा-सौन्दर्य होता है।

विषय-प्रतिपादन की प्रणाली

विषय के प्रतिपादन में देहाती प्रोग्राम की भाषा मूल रूप से तार्किक भाषा नहीं होती है। वह तो भावात्मक, उदाहरणात्मक और चित्र प्रस्तुत करने वाली भाषा होती है। शुद्ध तर्क का प्रयोग तो बुद्धिजीवी समाज

में किया जाता है। शिक्षित लोग कोई बात स्वीकार करने के पूर्व उसके लिए तर्क की मांग करते हैं। बालकों और देहातवासियों के लिए जिस तर्क का उपयोग किया भी जाता है वह निम्न श्रेणी का तर्क होता है। उसमें जटिलता नहीं होती है। वह तो मनोवैज्ञानिक तर्क होता है जिसका लक्ष्य अथवा माध्यम भावात्मक अपील अनुरोध अनुभव और कथा कहानियों के द्वारा किया जाता है। उसमें तर्क शास्त्र के नियमों का पालन करने की दृष्टि से तर्क नहीं किया जाता है।

अपने सुझावों और सुधारों को किसानों के जीवन में उतारने के लिए लेखक अपनी रचना में एक ऐसे व्यक्ति का समावेश कर सकता है जो देहात के लोगों के मस्तिष्क का प्रतिनिधित्व करता हो। वह देहात के एक सामान्य मनुष्य की तरह सुधारों और सुझावों पर भय और संशय से विचार करता है। वह बात-चीत के समाप्त होने के पूर्व ही दूसरे विषय पर प्रश्न पूछ लेता है। जहाँ एक ओर देहाती कार्यक्रम की रचना में इस प्रकार के पात्र का समावेश किया जाता है वहाँ दूसरी ओर इस प्रथम पात्र के विपरीत एक अन्य पात्र का प्रयोग किया जाता है। यह दूसरा पात्र-शिक्षित पंच या महाराज-प्रथम पात्र की शंकाओं का समाधान करता है। उसके विचारों और धारणाओं में परिवर्तन करने का प्रयत्न करता है। प्रथम पात्र ग्रामीण जीवन का प्रतिनिधित्व करता है तो दूसरा पात्र सुधार का प्रतीक है। एक जीवन का अभाव है तो दूसरा उस अभाव की पूर्ति का उपकरण। देहाती कार्यक्रम के लिए लिखी जानेवाली रचना में इस प्रकार के दो पात्रों या दो वस्तुओं का समावेश किया जा सकता है और किसी प्रश्न समस्या अथवा विषय पर वे अपने-अपने स्वभाव के अनुकूल तर्क-वितर्क कर सकते हैं। इस तर्क-वितर्क के फलस्वरूप प्रथम पात्र धीरे-धीरे सुधारों और सुझावों को स्वीकार कर लेता है। इसका एक अतिरिक्त यह भी हुआ कि अपने विषय को रोचक बनाने के लिए लेखक

शैली रचना का प्रयोग करता है जिसमें कम से कम दो पात्रों का समावेश हो यथा सम्वाद नाटक इत्यादि ।

साहित्य का रूप

देहातवासी अपने दिन भर के काम-काज से निवृत्त होकर घर लौटता है। इस हारे थके मानव को लम्बे और उपदेशों से भरे भाषणों की आवश्यकता नहीं है। वह कुछ ऐसा उपक्रम चाहता है जो उसका मनोरंजन कर सके और उसकी दिनभर की थकान को दूर करदे। फलतः देहात के श्रोताओं के लिए मनोरंजन के द्वारा शिक्षित करने का उपक्रम किया जाता है।

देहाती कार्यक्रम प्राय सम्वाद, लोकगीत, कहानी और भजनों के रूप में निर्मित होता है। देहातों में लोक-साहित्य, लोकनृत्य और लोक-संस्कृति के जो आयोजन होते हैं उनमें नाटक, नृत्य और भजन-मंडली के कार्यक्रम मुख्य हैं। इनके द्वारा लेखक अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है। नाटक तो चरित्र-निर्माण और ज्ञान-विकास का उत्तम और उपादेय साधन है। नाटक में प्रवचन रूप से आना बहुत कुछ लोप रहता है। नाटक के विपरीत भाषण में यह बात नहीं है। उसमें श्रोताओं के मन में लेखक के नवीन संदेश के प्रति एक मानसिक विरोध रहता है। परन्तु भाषण का बिल्कुल बहिष्कार किया जाय यह बात नहीं है। धार्मिक उपाख्यान, धार्मिक कथाओं और नीति की चर्चा करनेवाली वार्ताओं का उपयोग प्रभावपूर्ण हो सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि देहाती प्रोग्राम में रचना के माध्यम का देहातीकरण किया जाता है। यह कृति सप्राण और गतिशील होती है।

में किया जाता है। शिक्षित लोग कोई बात स्वीकार करने के पूर्व उसके लिए तर्क की मांग करते हैं। बालकों और देहातवासियों के लिए जिस तर्क का उपयोग किया भी जाता है वह निम्न श्रेणी का तर्क होता है। उसमें जटिलता नहीं होती है। वह तो मनोवैज्ञानिक तर्क होता है जिसका सरल अथवा मध्यम भावात्मक अपील अनुरोध अनुभव और कथा कहानियों के द्वारा किया जाता है। उसमें तर्क शास्त्र के नियमों का पालन करने की दृष्टि से तर्क नहीं किया जाता है।

अपने सुझावों और सुधारों को किसानों के जीवन में उतारने के लिए लेखक अपनी रचना में एक ऐसे व्यक्ति का समावेश कर सकता है जो देहात के लोगों के मस्तिष्क का प्रतिनिधित्व करता हो। वह देहात के एक सामान्य मनुष्य की तरह सुधारों और सुझावों पर भय और संशय से विचार करता है। वह बात-चीत के समाप्त होने के पूर्व ही दूसरे विषय पर प्रश्न पूछ लेता है। जहाँ एक ओर देहाती कार्यक्रम की रचना में इस प्रकार के पात्र का समावेश किया जाता है वहाँ दूसरी ओर इस प्रथम पात्र के विपरीत एक अन्य पात्र का प्रयोग किया जाता है। यह दूसरा पात्र-पण्डित पंच या महाराज-प्रथम पात्र की शंकाओं का समाधान करता है। उसके विश्वासों और धारणाओं में परिवर्तन करने का प्रयत्न करता है। प्रथम पात्र ग्रामीण जीवन का प्रतिनिधित्व करता है तो दूसरा पात्र सुधार का प्रतीक है। एक जीवन का अभाव है तो दूसरा उस अभाव की पूर्ति का साधन। देहाती कार्यक्रम के लिए किसी वार्तालापी रचना में इस प्रकार के दो पात्रों या दो वस्तुओं का समावेश किया जा सकता है और किसी प्रश्न समस्या अथवा विषय पर वे अपने-अपने स्वभाव के अनुकूल तर्क-वितर्क कर सकते हैं। इस तर्क-वितर्क के फलस्वरूप प्रथम पात्र धीरे धीरे सुधारों और सुझावों को स्वीकार कर लेता है। इसका एक अनिवार्य यह भी हुआ कि अपने विषय को ग्राह्य बनाने के लिए लेखक

ऐसी रचना का प्रयोग करता है जिसमें कम से कम दो पात्रों का समावेश हो यथा सम्वाद नाटक इत्यादि ।

साहित्य का रूप

देहातवासी अपने दिन भर के काम-काज से निवृत होकर घर लौटता है। इस हारे थके मानव को लम्बे-चौड़े उपदेशों से भरे भाषणों की आवश्यकता नहीं है। वह कुछ ऐसा उपक्रम चाहता है जो उसका मनोरंजन कर सके और उसकी दिनभर की थकान को दूर करदे। फलतः देहात के श्रोताओं के लिए मनोरंजन के द्वारा शिक्षित करने का उपक्रम किया जाता है।

देहाती कार्यक्रम प्रायः सम्वाद लोकगीत कहानी और भजनों के रूप में निर्मित होता है। देहातों में लोक-साहित्य लोकनृत्य और लोक-संस्कृति के जो आयोजन होते हैं उनमें नाटक नृत्य और भजन-मंडली के कार्यक्रम मुख्य हैं। इसके द्वारा लेखक अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है। नाटक तो चरित्र-निर्माण और ज्ञान-विकास का उत्तम और उपादेय साधन है। नाटक में अवतरण कम से श्रोता बहुत कुछ सीख लेता है। नाटक के विपरीत भाषण में यह बात नहीं है। उसमें श्रोताओं के मन में लेखक के मर्यादित उपदेश के प्रति एक मानसिक विरोध रहता है। परन्तु भाषण का बिल्कुल बहिष्कार किया जाय यह बात नहीं है। धार्मिक उत्सव धार्मिक कथाओं और नीति की चर्चा करनेवाली वार्ताओं का उपयोग प्रभावपूर्ण हो सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि देहाती प्रोग्राम में रचना के साथ भाषा का देहातीकरण किया जाता है। वह इति सप्राण और संक्षिप्त होती है।

बच्चों के लिये

रेडियो से बच्चों के लिए भी विशेष प्रकार का कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है इस प्रोग्राम का उद्देश्य बाल श्रोताओं को छोटी-मोटी वस्तुओं व्यक्तियों और घटनाओं की जानकारी प्रदान करना और उनका मनोरंजन करना होता है। उनमें साहसिकता यथा सत्य बोलना दूसरों की सहायता करना आदि चारित्रिक गुणों का विकास भी किया जाता है। उन्हें शिक्षाप्रद बातें बताई जाती हैं। शिक्षा बाल-साहित्य की आत्मा है।

विषय का चुनाव

ज्ञान-विकास अथवा चरित्र-निर्माण की दृष्टि से लेखक कोई उपयुक्त विषय चुन सकता है। यह विषय बाल-श्रोताओं के सीमित ज्ञान अल्प अनुभव अपरिपक्व बुद्धि और रुचि के अनुकूल होता है। लेखक किसी वस्तु अथवा विषय के सम्बन्ध में बाल-श्रोताओं को जो बातें बताये वे ऐसी होनी चाहियें जिन्हें वे अपने सीमित ज्ञान तथा अल्प बुद्धि के प्रकाश में समझ सकें। यथा किसी कहानी में लेखक यह कहे कि हरिमन देश के लिए मीर जाफर बन गया था तो बाल-श्रोता इस वाक्य का अर्थ नहीं समझ सकेंगे क्योंकि या तो मीर जाफर की कथा ही नहीं जानते हैं और या वह कथा जानते हुए भी हरिमन के कार्य को मीर जाफर की गद्दारी के प्रकाश में समझने में असमर्थ हैं। बालकों का ज्ञान सीमित होता है। इसलिए बाल सभा के प्रोग्राम में ऐसे विषयों का समावेश न किया जाय जिनके सम्बन्ध में वे साधारणतया न तो सोचते हैं और न सोच सकते हैं यथा देश-विदेश की गहरी समस्याएँ जीवन और समाज के बड़े बड़े प्रश्न आदि बाल-श्रोताओं को प्रत्येक उपयोगी विषय के सम्बन्ध में छोटी से छोटी बातें पहले बतानी होती हैं। जैसे खेल आम अमरूद आदि के विषय में उनके



बच्चों के लिये

रेडियो से बच्चों के लिए भी विशेष प्रकार का कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है इस प्रोग्राम का उद्देश्य बाल श्रोताओं को छोटी-मोटी वस्तुओं व्यक्तियों और घटनाओं की जानकारी प्रदान करना और उनका मनोरंजन करना होता है। उनमें साहसिकता तथा सत्य भाषण, दूसरों की सहायता करना आदि चारित्रिक गुणों का विकास भी किया जाता है। उन्हें शिक्षाप्रद बातें बताई जाती हैं। शिक्षा बाल-साहित्य की आत्मा है।

विषय का चुनाव

ज्ञान-विकास अथवा चरित्र-निर्माण की दृष्टि से लेखक कोई उपयुक्त विषय चुन सकता है। वह विषय बाल-श्रोताओं के सीमित ज्ञान अल्प अनुभव अपरिपक्व बुद्धि और रुचि के अनुकूल होता है। लेखक किसी वस्तु अथवा विषय के सम्बन्ध में बाल-श्रोताओं को जो बातें बताये वे ऐसी होनी चाहिये जिसे वे अपने सीमित ज्ञान तथा अल्प बुद्धि के प्रकाश में समझ सकें। यथा किसी कहानी में लेखक यह कहे कि हरिसेन देश के लिए वीर चाकर बन गया तो वे बाल-श्रोता इस वाक्य का अर्थ नहीं समझ सकेंगे या तो वीर चाकर की कथा ही नहीं जानते हैं और या वह कथा जानते हुए भी हरिसेन के कार्य को वीर चाकर की वफादारी के प्रकाश में समझने में असमर्थ हैं। बालकों का ज्ञान सीमित होता है। इसलिए बाल सभा के प्रोग्राम में ऐसे विषयों का समावेश न किया जाय जिनके सम्बन्ध में वे साधारणतया न तो जानते हैं और न जान सकते हैं यथा देश-विदेश की गहरी समस्याएँ जीवन और समाज के बड़े बड़े प्रश्न आदि बाल-श्रोताओं को प्रत्येक उपयोगी विषय के सम्बन्ध में छोटी से छोटी बातें जाननी होती हैं। घोड़े बैल भाप, एटमबम आदि के विषय में उनके

बच्चों के लिये

रेडियो से बच्चों के लिए भी विशेष प्रकार का
किया जाता है इस प्रोग्राम का उद्देश्य बाल श्रोता
वस्तुओं व्यक्तियों और घटनाओं की जानकारी प्रदान
मनोरंजन करना होता है । उनमें साहसिकता ...
दूसरों की सहायता करना आदि चारित्रिक गुणों का
जाता है । उन्हें शिक्षाप्रद बातें बताई जाती हैं । ...
की धारणा है ।

विषय का चुनाव

ज्ञान-विकास अथवा चरित्र-निर्माण की दृष्टि से ...
विषय चुन सकता है । यह विषय बाल-श्रोताओं के
अनुभव अपरिपक्व बुद्धि और रुचि के अनुकूल हो ...
वस्तु अथवा विषय के सम्बन्ध में बाल-श्रोताओं को ...
होनी चाहिये जिसे वे अपने सीमित ज्ञान तथा अनु...
समझ सकें । यथा किसी कहानी में लेखक यह कहे कि
मीर जाफर बन गया तो न बाल-श्रोता इस वाक्य
सकेंगे क्या या ना मीर जाफर की कथा ही नहीं जानते
जानते हुए भी हरिसेन के कार्य को मीर जाफर की
समझने में असमर्थ हैं । बालकों का ज्ञान सीमित
बाल सभा के प्रोग्राम में ऐसे विषयों का समावेश न किय
में व साधारणतया न तो सोचते हैं और न सोच सक
की अपनी समस्याएँ जीवन और समाज के बारे ।
श्रोताओं को प्रत्येक उपयोगी विषय के सम्बन्ध में
बहुनी बतानी होती है । चाहे वेल जाय फलफूल व

रंग रूप और आकार आदि की बातें पहले बतायी जायें और तब फिर उस विषय के सम्बन्ध में अन्य बातें भी बतायी जा सकती हैं।

बाल-श्रोता की बुद्धि अपरिपक्व होती है। वे जटिल बातें आसानी से नहीं समझ सकते हैं। उनको ऐसी बातें न बतायी जायें जिनमें तर्क-वितर्क, सूझ-बूझ और सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता हो। विवादग्रस्त विषय भी उनकी समझ में आसानी से नहीं आते हैं। लेखक इस बात की ओर सावधान रहता है। इसलिए उन्हें पशुओं पक्षियों नदियों झरनों पहाड़ों प्राकृतिक दृश्यों और योद्धाओं और त्यागी महात्माओं के जीवन की छोटी छोटी बातें बतायी जाती हैं। इन्हें सीखने और समझने में परिपक्व बुद्धि की आवश्यकता नहीं होती है।

रुचि का ध्यान —

बाल साहित्य का विषय बाल-श्रोताओं की रुचि के अनुकूल भी होता है। रचना का विषय ऐसा हो जो बच्चों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ हो। लेखक ऐसी बातों की ओर सजग रहता है जो बच्चों का ध्यान आकर्षित करती हैं उन्हें प्रिय लगती हैं और उनकी रुचि को जागृत करने की क्षमता रखती हैं।

बड़ों और बच्चों की रुचि और प्रकृति एक दूसरे से भिन्न होती है। बच्चों के प्रोग्राम के लिए जिन बच्चों की रुचि-अरुचि का पता लगाया जाता है वे न तो बहुत छोटे बच्चे होते हैं और न बहुत बड़े ही अर्थात् वे बालक जिनकी वय पांच से बारह वर्ष तक होती है। इस वय के बच्चों में जिज्ञासा वृत्ति (अनजानी बातों को जानना) बहुत तीव्र होती है। वे अनेक बातों की जानकारी प्राप्त करने के लिए सब दिशाओं में जाते हैं, पेड़ पर चढ़ते हैं, पतंगों के पीछे भागते हैं और गाने और पद्य सीखते हैं। जिज्ञासा अथवा नई बातों के जानने की इस इच्छा के द्वारा बाल-श्रोताओं

रंग रूप और आकार आदि की बातें पहले बतायी जायें और तब फिर उस विषय के सम्बन्ध में अन्य बातें भी बतायी जा सकती हैं।

बाल-श्रोता की बुद्धि अपरिपक्व होती है। वे कठिन बातें आसानी से नहीं समझ सकते हैं। उनको ऐसी बातें न बतायी जायें जिनमें तर्क-वितर्क, सूझ-बूझ और सूक्ष्म दृष्टि की आवश्यकता हो। विज्ञान के विषय भी उनकी समझ में आसानी से नहीं आते हैं। लेखक इन बातों की ओर सावधान रहता है। इसलिए उन्हें पशु-पक्षियों, नदियों, झरनों, पहाड़ों, प्राकृतिक दृश्यों और राजाओं और त्यागी महात्माओं के जीवन की छोटी छोटी बातें बतायी जाती हैं। इन्हें सीखने और समझने में परिपक्व बुद्धि की आवश्यकता नहीं होती है।

रुचि का ध्यान —

बाल साहित्य का विषय बाल-श्रोताओं की रुचि के अनुकूल भी होता है। रचना का विषय ऐसा हो जो बच्चों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ हो। लेखक ऐसी बातों की ओर सजग रहता है जो बच्चों का ध्यान आकर्षित करती हैं, उन्हें प्रिय लगती हैं और उनकी रुचि को जागृत करने की क्षमता रखती हैं।

बड़ों और बच्चों की रुचि और प्रवृत्ति एक दूसरे से भिन्न होती है। बच्चों के प्रोग्राम के लिए जिन बच्चों की रुचि-अरुचि का पता लगाया जाता है वे न तो बहुत छोटे बच्चे होते हैं और न बहुत बड़े ही, अर्थात् वे बालक जिनकी वय पांच से बारह वर्ष तक होती है। इस वय के बच्चों में जिज्ञासा वृत्ति (अनजानी बातों को जानना) बहुत तीव्र होती है। वे अनेक बातों की जानकारी प्राप्त करने के लिए हर स्थिति में जाते हैं, पेड़ों पर चढ़ते हैं, पदार्थों के पीछे भागते हैं और नाम भी पूछ लेते हैं। जिज्ञासा अथवा नई बातों के जानने की इस इच्छा के द्वारा बाल-श्रोताओं

की उपयोगी और उत्तम वस्तुओं और विषयों का ज्ञान प्रदान किया जाता है। वे मनमानी बातों का वर्णन बड़ा ही धैर्य और ध्यान से सुनते हैं यथा चन्द्रलोक की यात्रा टुंड्रा के निवासियों का जीवन सहारा के रेगिस्तान आदि। जिन वस्तुओं व्यक्तियों और विषयों के सम्बन्ध में बालकों का ज्ञान अधूरा हो उसे पूरा किया जा सकता है।

जिज्ञासा-पूर्ति

जिज्ञासा-पूर्ति की दृष्टि से स्कूल में पढ़ाए जानेवाले विषयों पर प्रकाश नहीं डाला जाता है। ये विषय बाल श्रोता के लिए रुचिकर नहीं होते हैं। वे चिर परिचित बातों को प्रकट करते हैं उनमें नवीनता नहीं होती।

इस वय के बच्चे व्यावहारिक कार्य करने के लिए उत्सुक रहते हैं। इस लिए खेल-कूद पहेलियां बूझना चुटकुले और प्रतियोगिता आदि के कार्यक्रम का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार की रचनाओं से बाल-श्रोताओं में तर्क-शक्ति और तत्परता का विकास होता है। लेखक अपनी रचना में ऐसी बातों का समावेश कर सकता है जो बच्चों को रुचिकर लगती हों और जिनको सुनकर उनको शिक्षा मिलती हो अथवा उनका मनोरंजन होता हो।

बाल-कार्यक्रम की रचनाएं श्रोताओं की जानकारी ही नहीं बढ़ाती अपितु बच्चों के चरित्र-विकास में भी सहायक होती हैं। छोटे छोटे नाटकों और कहानियों के द्वारा बच्चों में सत्य-प्रियता सहयोग साहस दया धीरता बड़ों का आदर करना आदि चारित्रिक गुणों का विकास किया जा सकता है। इन रचनाओं का विषय श्रोताओं में प्रचलित कथाओं और पौराणिक गाथाओं से लिया जा सकता है। किसी राज्य के लोक साहित्य अथवा लोक संस्कृति में ऐसी एक नहीं अनेक कथाएं मिल

सकती है जिसमें कोई न कोई नैतिक संदेश विद्यमान हो। अन्तर्राज्यीय लोक साहित्य और अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य से भी ऐसे विषय प्राप्त किए जा सकते हैं।

कहानी का महत्व

कहानी बच्चों को बहुत प्रिय लगती है। कहानी सुनने के लिए वे एक स्थान पर घंटों चुपचाप बैठने को तत्पर हो जाते हैं। बालक सामाजिक अनुशासन के अनेक बन्धनों में जकड़ा रहता है। ये बन्धन कपड़े और भोजन के चुनाव पर भी लागू होते हैं। वह स्वतंत्र रूप से अपनी इच्छा को पूरी नहीं कर सकता है। वह आत्म प्रदर्शन और आत्म प्रकाशन करने में अपने आप को असमर्थ पाता है। इसलिए वह कुछ मनोरंजन चाहता है विनोद के कार्यक्रम की अपेक्षा करता है। वह विचित्र चरित्र के प्रदर्शन बसिर पैर की बात और गिरने पड़ने के कार्यों को देख-सुनकर हंसता है।

परियों पशुओं और देवी-देवताओं को कहानियां सुनकर वह आनन्द का अनुभव करता है।

आदर्शों की रक्षा

बालकों के लिए लिखी जाने वाली कहानियों में लेखक के लिए दो बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। कहानी में लेखक पात्रों के रूप में पुण्य (नायक) और पाप (प्रतिनायक) सत्य और असत्य के बीच संघर्ष बना सकता है। इस संघर्ष का परिणाम भी बताया जाता है। कहानी के परिणाम में सदैव सत्य की विजय का अंकन करना आवश्यक है। "सत्यमेव जयते"।

कहानी की एक दूसरी आवश्यकता और है। कहानी का नायक ऐसा नहीं होना चाहिये जो विरुद्ध और कठोर परिस्थितियों में अविच

हीनता और अकर्मण्यता अनुभव करता हो। वह ऐसा व्यक्ति हो जो कठोरतम विरोध को कुचलता हुआ कहानी के अन्त में विजय-घोष करता हो। बाल-श्रोता कहानी सुनते समय नायक के दुख से दुखी और उसके सुख से सुखी होते हैं। वे अपने आप को उपर्युक्त अवस्था में नायक समझते हैं। नायक की सफलता बालक श्रोता की सफलता है। नायक को वीर साहसी और सफल व्यक्ति के रूप में प्रदर्शित करने के लिए उसे पन्द्रह वर्ष से छोटी उम्र का नहीं बताया जाता है।

परियों की कहानियां भी लिखी जा सकती हैं। इन कहानियों में परी ऐसे प्राणी के रूप में चित्रित की जाती है जो किसी असहाय व्यक्ति या बालक को सहायता प्रेम और पुरस्कार प्रदान करती हो। इस प्रकार कहानियां सुनकर उन सभी बच्चों को आनन्द प्राप्त होगा जिन्हें अपनी सौतेली मां पिता बड़े भाई आदि से दैनिक जीवन में सहायता प्रेम और पुरस्कार नसीब न होता हो। परियों की कहानियों का अधिकांश प्रसारण रेडियो पर नहीं किया जाता है। कहानियों के द्वारा बच्चों में नैतिक सिद्धान्तों वैज्ञानिक विचारों और सामाजिक गुणों का विकास किया जाता है। यही बात नाटकों के लिए भी सत्य है।

नाटक लिखें

बच्चों के लिए नाटक का महत्व कहानी से भी अधिक है। बच्चों के आचार-विचार पर नाटक का गहरा प्रभाव पड़ता है। नाटकों का कार्यक्रम सुनने के बाद बच्चे प्रायः नाटक के पात्रों के समान ही व्यवहार करते देखे गये हैं। वे पात्रों के समान बोलने और कार्य करते हैं। इसी कारण नाटक में पात्रों के आचार-विचार को आदर्श और अनुकरणीय रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

सरल भाषा

सरल विषय सरल शब्द और सरल वाक्य बच्चों की रचना की तीन विशिष्ट आवश्यकताएं हैं। श्रोता को एक एक शब्द का अर्थ स्पष्ट होना आवश्यक है। लेखक छोटे छोटे वाक्यों का प्रयोग करता है। उस रचना में लम्बे और जटिल वाक्यों का सर्वथा अभाव होता है।

उस भाषा में तर्क का कम प्रयोग किया जाता है। इस कार्य में किसी बात की व्याख्या करते समय यदि लेखक यह मानकर चले कि सुनने वाला उस विषय में कुछ नहीं जानता है तो कोई आपत्ति नहीं।

रचना लिखते समय लेखक बालक का ध्यान नहीं करता है। वह हार्दिक रूप से लिखते चला जाता है।

बच्चों के लिए रेडियो से एक विशेष प्रोग्राम प्रसारित किया जाता है। इन प्रोग्राम की रचनाएँ बाल-श्रोताओं को सामान्य विषयों की जानकारी प्रदान करती हैं। साथ ही साथ बच्चों का मनोरंजन भी किया जाता है। इस आमोद-प्रमोद के कार्यक्रम की तह में नीति और शिक्षा का महत्व भी रहता है। इन रचनाओं की भाषा अति सरल होती है और ये प्राय: कहानी नाटक और बात चीत के रूप में लिखी जाती हैं।

विद्यार्थियों का कार्यक्रम

रेडियो से विद्यार्थियों के लिए भी विशेष कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है। इस कार्यक्रम के दो उद्देश्य हैं। एक तो यह कि विद्यार्थियों के साधारण ज्ञान को बढ़ाया जाय। वे बहुश्रुत हों और उनका मनोरंजन भी हो। दूसरा उद्देश्य यह है कि उनका चरित्र-गठन किया जाय और उनमें साहसिकता सत्य-प्रियता राष्ट्रीयता नागरिकता कर्तव्य-पालन आदि का विकास हो। इस प्रसारण का मुख्य उद्देश्य स्कूल के रोजमर्रा के पठन-पाठन की पूर्ति है न कि अध्यापक के स्थान को ग्रहण कर लेना।

निषिद्ध विषय

इन उद्देश्यों की पूर्ति में कार्यक्रम-निर्माता और लेखक प्रायः उन विषयों को स्थान नहीं देते हैं जो नित्य प्रतिदिन विद्यार्थियों को कक्षाओं में पढ़ाये जाते हैं। विद्यालय के चिर परिचित विषयों और वातावरण से छुट्टी पाकर विद्यार्थी कुछ अन्य नये विषयों के सम्बन्ध में सुनना चाहता है। वह ऐसी रचना सुनना चाहता है जो उसे अधिक बुद्धिमान समान ज्ञानी और ज्ञान-विज्ञान से परिचित करा सके। इस प्रकार का ज्ञान कक्षाओं में पढ़ाये जाने वाले विषयों के लिए पृष्ठभूमि अवश्य तैयार कर सकता है। कभी कभी कक्षाओं के विषयों पर भी प्रकाश डाला जा सकता है। यह कार्य रोचक ढंग से सम्पन्न किया जाता है। उसमें विषय के प्रतिपादन में शास्त्रीय विवेचन का अभाव होता है।

साधारण ज्ञान

इस कार्यक्रम में साधारण ज्ञान विकास पर अधिक जोर दिया जाता है। विद्यार्थियों को वर्तमान और भविष्य की समस्याओं घटनाओं और महान् व्यक्तियों से परिचय कराया जाता है। उन्हें वर्तमान समय के क्रान्तिकारी वैज्ञानिक आविष्कारों राजनीतिक समस्याओं इतिहास

चिकित्सा प्रणालियों और संस्थाओं आदि की जानकारी भी करायी जा सकती है। इसी प्रकार देश-विदेश के घटनाचक्र, खेलकूद और अन्य भाव त्मक बातों पर रचनाएं तैयार की जा सकती हैं। विद्यार्थियों के कार्यक्रम में अन्य ऐसे ही सूचनात्मक विषयों का समावेश किया जाता है।

विद्यार्थियों को रुचिकर लगने वाले विषयों पर लिखी जाने वाली रचना को अभिनव रूप में प्रस्तुत किया जा सकता और भी अधिक अच्छा हो। एक बार आल इण्डिया रेडियो से विद्यार्थियों के कार्यक्रम में पेनी-सलीन की उत्पत्ति और उपयोग पर एक बड़ी ही रोचक फीचर गुमा रचना प्रसारित की गयी थी। विद्यार्थियों के गुण अथवा व्यावहारिक ज्ञान के विकास का प्रभाव उनके आचार-विचार और चरित्र पर भी पड़ता है।

चरित्र गठन

विद्यार्थी-जीवन चरित्र के विकास करने का सुअवसर है। रेडियो चरित्र-निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकता है। विद्यार्थी के चरित्र के दो पहलू हैं वैयक्तिक और सामाजिक। विद्यार्थी के वैयक्तिक जीवन में व्यायाम स्वास्थ्य भोजन-विज्ञान की जानकारी पुस्तकों, कमरे और वस्त्रों की स्वच्छता अच्छी आदतें डालना स्वाध्याय करना और सभ्य ढंग से चलने उठने-बैठने और बात करने के सिद्धान्तों आदि का समावेश किया जा सकता है। स्वच्छता के अन्तर्गत नाखून काटने से नहाने तक की बातों का समावेश किया जाता है।

चरित्र के दूसरे पक्ष का सम्बन्ध विद्यार्थी के सामाजिक जीवन से है। विद्यार्थी एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक राष्ट्रीय सांस्कृतिक और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसके कुछ कर्तव्य और अधिकार हैं। स्कूल में घर में घर के बाहर गली-समाज में उसे सभ्य संस्कारी और सुनागरिक की भांति अपने कर्तव्यों का पालन करने की प्रेरणा प्रदान की जाती है। सहकारिता सहयोग सेवा करना आदि गुण ही कर्तव्य हैं जिनके विकास में

लेखक अपनी रचना के द्वारा सहायक सिद्ध हो सकता है। वह विद्यार्थियों के सामने अच्छे आचार-विचार के आदर्श और सुझाव भी उपस्थित कर सकता है अप्रत्यक्ष रूप से प्रत्यक्ष रूप से नहीं।

माध्यमा आवश्यक

विद्यार्थी श्रोता के सामने किसी आदर्श अथवा सुझाव को सावधानी से रखना होता है। विद्यार्थी-श्रोता एक शान्त चित्त प्राणी नहीं है। वह लेखक के सभी सुझाव स्वीकार नहीं करता। वह एक सचेत जागरूक व्यक्ति है। लेखक जो कुछ कहता है वह उसकी परीक्षा करता है उस पर सोचता है और उचित समझने पर उसे स्वीकार करता है और अपने जीवन में उतारता है। अपने विचारों को श्रोताओं के मन में उतारने के लिए लेखक अपनी रचना में ऐसी कला का समावेश करता है जो विद्यार्थियों के लिए रुचिकर और आकर्षक होती है। ऐसा करने में वह मनोरंजन का सहारा भी ले सकता है।

विद्यार्थियों में प्रायः आत्म-प्रदर्शन, बौद्धिक जिज्ञासा और ममता गुण और सरस प्रवृत्ति तीव्र होती है। विद्यार्थी-श्रोताओं को रचना की ओर आकर्षित करने के लिए लेखक रचना में इन प्रवृत्तियों को क्रियाशील करने वाली बातें डाल सकता है। इस प्रकार अनेक उपयोगी बातें और सिद्धान्त विद्यार्थियों के जीवन में उतारे जा सकते हैं। एक उदाहरण लीजिये। यदि विद्यार्थी-श्रोता के मन में यह बात अप्रत्यक्ष रूप से डाली जाय कि स्वच्छ वस्त्र धारण करनेवाले विद्यार्थी छात्र और अध्यापकों के आदर और आकर्षण के पात्र बन जाते हैं तो विद्यार्थी-श्रोता अपनी शान और आत्म प्रदर्शन की इच्छा की तुष्टि के लिए स्वच्छ वस्त्र पहिनने लग जायगा। इसी प्रकार ज्ञान के विकास के लिए विद्यार्थी श्रोता की जिज्ञासा वृत्ति को जागृत किया जा सकता है। उसमें ज्ञान वार्ता के साथ साथ प्रमाण द्वारा ज्ञान प्रदान किया जा सकता है। ज्ञान और प्रमाण साथ सा

संयुक्त प्रयोग उनकी जिज्ञासा को जगा देगा और वह संबंधित वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना के सम्बन्ध में और बातों की जानकारी प्राप्त करने के लिए उत्सुक हो जायगा। इस प्रकार विद्यार्थी श्रोताओं की रुचि-अरुचि की बातों को ध्यान में रखकर उनके ज्ञान का विकास और चरित्र का निर्माण किया जा सकता है।

एक बात और है। विद्यार्थी कार्यक्रम की रचना में लेखक उपदेशक नहीं बनता। 'यह करो और यह न करो" की शैली विद्यार्थी श्रोताओं को पसंद नहीं आती है। जो संदेश उन्हें देना हो उसे जीवन-चरित्र आत्मकथा रूपक और संवाद के रूप में प्रकट करना चाहिये।

अनुकूल-भाषा

विद्यार्थियों के कार्यक्रम में विद्यार्थी-श्रोताओं के अनुभव ज्ञान बुद्धि मानसिक विकास और रुचि को ध्यान में रखकर एक विशेष भाषा-शैली का प्रयोग किया जाता है। प्राथमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए सरल भाषा का उपयोग किया जाता है और विषय के प्रतिपादन में कहानियों, उपमाओं और उदाहरणों के उपयोग पर जोर दिया जाता है। हाई स्कूल के विद्यार्थियों के लिए प्रसारित की जानेवाली रचना की भाषा सरल होती है परन्तु उसके उदाहरण विद्यार्थियों की विकसित बुद्धि के अनुकूल होते हैं। विश्व विद्यालय के विद्यार्थी-श्रोताओं की भाषा में परिपक्वता होती है उसमें साहित्यिक और संयत वाक्यों का प्रयोग भी किया जाता है। उसमें विषय की गंभीर और सूक्ष्म व्याख्या की जाती है।

विद्यार्थियों के लिए प्रसारित होने वाले कार्यक्रम में कक्षा में पढ़ाये जानेवाले विषयों का समावेश नहीं होता है। विद्यार्थी श्रोताओं को साधारण ज्ञान प्रदान किया जाता है और उनके चरित्र का विकास करने का प्रयत्न किया जाता है। रचना की भाषा में व्याकरण और साहित्य सौन्दर्य का ध्यान रखा जाता है। वक्ता के शब्दों के उच्चारण से भी विद्यार्थी ठीक उच्चारण करना सीखता है।

महिला-संसार

महिलाओं का अपना अलग संसार है। स्त्री और पुरुष दोनों की समस्याएं और जीवन-आदर्श एक दूसरे से प्राय भिन्न होते हैं। नारी की प्रकृति भी पुरुष के स्वभाव से भिन्न होती है। इसलिए महिलाओं के लिए एक विशेष प्रकार का प्रोग्राम प्रसारित करना आवश्यक है। किन्तु महिलाओं के कार्यक्षेत्र में परिवर्तन होता रहता है। अत ज्यों ज्यों उनके कार्यक्षेत्र में विकास होगा त्यों त्यों उनके लिए प्रसारित होने वाले कार्यक्रम में परिवर्तन करना पड़ेगा।

महिलाओं के कार्य-क्षेत्र

महिलाओं के अनेक कार्यक्षेत्र हैं। इन्हें लेकर अपनी रचना के द्वारा हम श्रोताओं में महिलाओं को जागरूक कर्तव्य-परायण और समाज का उपयोगी सदस्य बनाने का यत्न करता है। इसके फलस्वरूप नारी की समस्त प्रकृति और प्रवृत्तियों का पूर्ण विकास भी हो जाता है। महिलाओं के इन कार्यक्षेत्रों को लेकर अपनी रचना के लिए विषय चुन सकता है। सांस्कृतिक परम्परा नैसर्गिक कोमलता शारीरिक सीमाएं और प्राकृतिक विशेषताओं के कारण नारी के कुछ विशेष कार्य-क्षेत्र बन गये हैं। महिलाओं का कार्य-क्षेत्र घर के भीतर और बाहर दोनों स्थानों पर है।

पाकशास्त्र के विषय

घर के भीतर महिला का एक आवश्यक कर्तव्य-क्षेत्र है। इस कर्तव्य-क्षेत्र में पाक-शास्त्र के विषय पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है। अमुक सब्जी कैसे बनायी जाय, अमुक मिठाई कैसे बनती है और अमुक वस्तु के बनाने में कौन कौन सी सामग्री डाली जाती है। इस प्रकार का व्यावहारिक ज्ञान महिलाओं को प्रदान किया जा सकता है। हर दशा में किसी भी भोजन

पदार्थ के बनाने की विधि का प्रदर्शन स्पष्ट व्यावहारिक और सोदाहरण होना अपेक्षित है।

सुनने वाली बहिनों की परिस्थितियों में उस भोजन का बनाना संभव भी होना आवश्यक है। यह नहीं होता है कि जब देश में गेहूं का तोड़ा हो तब चार सेर गेहूं के आटे से एक सेर आटे की चपाती का रस्सा बनाने का उल्लेख किया जाय और न ऐसी भोज्य सामग्री बतायी जाय जिस पर अधिक खर्चा बैठता हो। पाक शास्त्र के किसी विषय पर जो कुछ बताया जाय वह श्रोता-महिलाओं के धार्मिक सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में व्यावहारिक होना आवश्यक है।

पाक-सामग्री की विधि के वर्णन में मौसम का ध्यान रखना अनिवार्य है। ऐसा न हो कि करमकल्ला बनाने की विधि उस समय बतायी जाय जब उसका मौसम ही न हो।

पाकशास्त्र शब्द का अर्थ अति व्यापक है। यह भोज्य पदार्थों के बनाने की विधि तक ही सीमित नहीं है। पाकशास्त्र की शिक्षा के अन्तर्गत रसोई के बर्तनों का उचित प्रकार से रखने आदि और उनके उपयोग की बातें भी बतायी जा सकती हैं।

इस प्रकार के व्यावहारिक ज्ञान में भोजन विज्ञान की अन्य आवश्यक बातें भी बतायी जाती हैं। कौन से भोज्य पदार्थ में कौन कौन से जीवन तत्व (विटामिन) अथवा अन्य गुण हैं। एक संतुलित भोजन में कौन कौन सी वस्तुएं रहती हैं। भोजन को किस प्रकार से खाना उचित है, कौन से ऋतु में कौन २ से फल हैं भोजन विज्ञान में ऐसी सभी स्वास्थ्य हितकारी बातों का समावेश किया जाता है। भोजन का मनुष्य के स्वास्थ्य शारीरिक और मानसिक विकास में बड़ा महत्व का स्थान है। उत्तम ढंग से बनाना उत्तम ढंग से बनाया और उत्तम ढंग से पकाया हुआ भोजन मनुष्य जीवन की आधी सफलता है।

शिशु पालन

घर में नारी की दूसरी बड़ी समस्या है शिशु-पालन। साधारणतः प्रत्येक महिला जननी है। परन्तु चतुर माता के रूप में ही जननी की सार्थकता है। शिशु-पालन के लिए माता में विशेष ज्ञान अपेक्षित है। चतुर माता शिशु के शारीरिक और मानसिक विकास का ज्ञान प्राप्त करती है। उसके गुण-दुर्गुण और आवश्यकताओं को पहिचानने का प्रयत्न करती है। अतः बालक शिशु की रक्षा-व्यवस्था पालन-पोषण और उसकी प्रारम्भिक शिक्षा पर अपनी रचना तैयार कर सकता है। वह यह भी बतला सकता है कि किस प्रकार के लालन-पालन से बच्चों की आदतें बिगड़ जाती हैं। वह बाल-मनोविज्ञान (चाइल्ड साइकोलोजी) की बात बताता है।

घर की देख रेख

घर की व्यवस्था को सुचारु और सुन्दर रूप से संचालित करना एक अच्छी गृहणी का प्रमुख कर्तव्य है। घर की व्यवस्था करना उसके लिए आत्म-विकास का साधन भी है और इस प्रकार अपना कुनबे के अन्य सदस्यों के विकास के लिए वह क्षेत्र भी तैयार करती है।

शरीर, स्वास्थ्य और संस्कृति

मनुष्य के लिए स्वास्थ्य ही सब सुख का मूल है। चतुर नारी अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखती है। वह इस बात का भी ध्यान रखती है कि परिवार के अन्य सदस्यों और बालकों में स्वास्थ्यप्रद जीवन के नियमों का पालन करने की आदतों का विकास हो रहा है या नहीं। स्वास्थ्य के प्रत्येक नियम की विशेषता और पालन करने के महत्व पर रोचक कृति का निर्माण किया जा सकता है।

महिलाओं के जीवन में मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक संस्कृति का भी बहुत महत्व है। उनका मानसिक धरातल का ऊपर उठाया जाय।

उन्हें धर्म ज्ञान पौराणिक गाथाओं ऐतिहासिक कथाओं स्त्रियों के त्याग, बलिदान और साहस की बातें सुनाई जायें। उनमें समय की पाबन्दी सत् साहित्य का अध्ययन दूसरों के प्रति आदर भाव और अच्छे आचार विचार का विकास भी किया जा सकता। उचित ढंग से उठना बैठना और अभिवादन करने के नियमों से लेकर दर्शन-शास्त्र और युग की राजनीतिक सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधि तक की बातों का समावेश मासिक सत्संग में किया जाता है। व्यापक इन सभी विषयों पर अपनी रचना तैयार कर सकता है।

घर का डाक्टर

घर के एक जिम्मेदार सदस्य के नाते महिला को कभी कभी रोगी की सेवा-शुश्रूषा भी करनी पड़ती है। सिर में दर्द होना पेट का दुखना बुखार का चढ़ना और छोटी मोटी चोट लग जाना ये सभी बातें हुआ पारिवारिक जीवन में होती रहती हैं। ऐसी दशा में एक गृह संचालिका के लिए इन व्याधियों के उपचार और औषधियों की जानकारी होनी आवश्यक है। सेवक महिलाओं को रोगों के उपचार, उनकी औषधियों और रोकथाम करने के सही और वास्तविक तरीकों का ज्ञान प्रदान कर सकता है। रोगों के कारणों लक्षणों और उपचार का यह ज्ञान दिलचस्प न होकर साधारण होता है।

रोगी की सेवा-शुश्रूषा के सम्बन्ध में एक बात की सावधानी रखनी होती है। रोगी की सेवा करना भी एक कला है। वह एकान्त चाहती है। वह चाहता है कोई न कोई उसके पास बैठा रहे। यह बातें भी महिलाओं के कार्यक्रम में सम्मिलित की जा सकती हैं।

वस्तुओं की व्यवस्था

महिलाएं घर में वस्तुओं और कपड़ों आदि की व्यवस्था करती हैं। घर की वस्तुओं का ठीक ढंग से सजाना, सजाना और निर्धारित स्थान पर रखने

से घर के बहुत से लफड़े-झंझटों का अन्त हो सकता है। कभी कभी बर्तनों और कुंजियों के नियमित स्थान पर न होने के कारण घर में एक महाभारत मच जाता है। इस प्रकार के उदाहरणों द्वारा लेखक महिलाओं में वस्तुओं की उचित व्यवस्था करने और बनाने की आदत डाल सकता है। वे घर में कपड़ों की देखभाल भी करती हैं। कपड़ों को साफ करना उन्हें धोना सीना और इस्त्री करना एक उपयोगी कला है जिसे महिलाओं के लिए स्वयं सीखना और घर के अन्य सदस्यों को सिखाना आवश्यक है।

घर का मनोरंजन

घर की सुव्यवस्था में मनोरंजन का भी स्थान है। घर में आमोद प्रमोद हो आपसों में हास-परिहास हो। यह नहीं कि बच्चा के माता-पिता कठोर बूढ़ा बनाए बैठ रहें। घर में बच्चे माता-पिता और बड़ों से स्नेह और प्रेम की आकांक्षा करते हैं। इसलिए महिलाओं का इस ओर प्रयत्न शील रहना चाहिये कि घर का वातावरण हास-परिहासमय रहे।

नारी के रूप

नारी के अनेक रूप हैं। इनमें भगिनि भार्या और माता का रूप मुख्य है। इन तीनों रूपों में नारी के कुछ विशेष अधिकार और कर्तव्य हैं। भगिनी के रूप में उसे अपने छोटे बड़े भाइयों के प्रति स्नेह रखना होता है और उसे घर के कार्य में माँ की सहायता करनी पड़ती है। पत्नी के रूप में उसे पति-परायण सहयोगी और दुःख सुख की साथी बनना होता है। माता के रूप में उसे शिशुओं के प्रति कोमल बनना और घर की सुव्यवस्था करनी होती है। लेखक इसी प्रकार के विचारों पर अपनी रचना प्रस्तुत कर सकता है।

महिलाओं को घर के साज-सज्जा में व्यक्तिगत सौन्दर्य और सजावट एवं घर के बाहर का भी ध्यान करना पड़ता है। समय की सफलता इसमें

है कि महिलाओं के घर के कर्तव्य-क्षेत्र में से वह कितने उपयोगी और आवश्यक विषयों पर अपनी रचना तैयार कर सकता है ।

घर के बाहर

जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में आज नर-नारी को समान अधिकार प्राप्त हैं । दोनों का कार्य-क्षेत्र घर और घर के बाहर दोनों स्थानों पर है । नारी जीवन के जिस किसी क्षेत्र में पिछड़ी हुई है उसी क्षेत्र में वह अपने अधिकारों का उपयोग करने और विकास करने के लिए प्रयत्नशील है । इस काम में लेखक महिला आत्मशासन और उसके विकास के प्रयासों में अपनी रचना से बल प्रदान कर सकता है । वैज्ञानिक सामाजिक राजनीतिक आर्थिक और साहित्यिक जीवन के क्षेत्र में नारी आज अपना सम्पूर्ण रूप का साथ दे रही है । इन सभी क्षेत्रों में वह अपनी मर्यादा अंकित कर सकती है, करती रही है ।

शिक्षा का क्षेत्र

नारी शिक्षा प्राप्त करने की अधिकारिणी है । "विद्या विहीन पशु" किन्तु शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान विकास करना ही नहीं है । लेखक अपनी रचना के द्वारा नारी के चरित्र का विकास करता है । वह उसमें सत्य प्रियता स्वावलम्बिता कर्तव्य-परायणता दया ममता सहयोग सहनशीलता कुछ न कहना, धैर्य रखना आत्म-विश्वास संयम आदि गुणों का विकास करता है । लेखक नारी के विकास की सभी सम्भावनाओं की ओर सजग रहता है ताकि नारी का व्यक्तित्व एक परिपूर्ण और परिपक्व व्यक्तित्व के रूप में परिवर्तित हो जाय ।

व्यापक सेवा

शिक्षा का उद्देश्य सेवा करना है घर के भीतर अथवा घर के बाहर, और अन्य सभी स्थानों पर । राजकीय सामाजिक राजनीतिक अथवा

से घर के बारे में लड़ाई-झगड़ों का प्रश्न हो सकता है। कभी कभी बर्तनों और कुर्सियों के निश्चित स्थान पर न होने के कारण घर में एक महाभारत मच जाता है। इस प्रकार के उदाहरणों द्वारा बालक महिलाओं में वस्तुओं की उचित व्यवस्था करने और जमाने की आदत डाल सकता है। वे घर में कपड़ों की देखभाल भी करती हैं। कपड़ों का साफ करना उन्हें धोना सीना और इस्त्री करना एक उपयोगी कला है जिसे महिलाओं के लिए स्वयं सीखना और घर के अन्य सदस्यों को सिखाना आवश्यक है।

घर के मनोरंजन

घर की सुव्यवस्था में मनोरंजन का भी स्थान है। घर में चारों ओर प्रसन्नता हो सबों में हास-परिहास हो। यह नहीं कि बच्चों से माता-पिता मुंह बनाए बैठे रहें। घर में बच्चे माता पिता और बड़ों से स्नेह और प्रेम की आकांक्षा करते हैं। इसलिए महिलाओं को इस ओर प्रयत्नशील रहना चाहिये कि घर का वातावरण हास-परिहासमय रहे।

नारी के रूप

नारी के अनेक रूप हैं। इनमें भगिनि भार्या और माता का रूप मुख्य है। इन तीनों रूपों में नारी के कुछ विशेष अधिकार और कर्त्तव्य हैं। भगिनी के रूप में उसे अपने छोटे बड़े भाइयों के प्रति स्नेह रखना होता है और उसे घर के कार्य में माँ की सहायता करनी पड़ती है। पत्नी के रूप में उसे पति-परायण सहगामी और दुख सुख की साथी बनना होता है। माता के रूप में उसे शिशुओं के प्रति कोमल बनना और घर की सुव्यवस्था करनी होती है। बालक इसी प्रकार के विचारों पर अपनी रचना प्रस्तुत कर सकता है।

महिलाओं को घर के कार्य-क्षेत्र में व्यक्तिगत सौन्दर्य और सजावट एवं घर के बजट तक का कार्य करना पड़ता है। बालक की सफलता इसमें

है कि महिलाओं के घर व कर्मक्षेत्र-क्षेत्र में व वह जिनसे उपयोगी और आवश्यक विषयों पर अपनी रचना तैयार कर सकता है ।

घर के बाहर

जीवन के लगभग सभी क्षेत्रों में आज नर-नारी को समान अधिकार प्राप्त हैं । नारी का कार्य-क्षेत्र घर और घर के बाहर, दोनों स्थानों पर है । नारी जीवन के जिस किसी क्षेत्र में पिछड़ी हुई है उसी क्षेत्र में वह अपने अधिकारों का उपयोग करने और विकास करने के लिए प्रयत्नशील है । इस कार्य में समाज महिला आन्दोलन और उसके विकास के प्रयासों में अपनी रचना से बल प्रदान कर सकता है । देश का सामाजिक राजनैतिक धार्मिक और साहित्यिक जीवन के क्षेत्र में नारी आज स्वतन्त्र सम्पूर्ण रूप का कार्य रही है । इन सभी क्षेत्रों में वह अपनी सेवाएं अर्पित कर सकती है, करने लगा है ।

शिक्षा का क्षेत्र

नारी शिक्षा प्राप्त करने की अधिकारिणी है । "शिक्षा विशेषज्ञ" किन्तु शिक्षा का उद्देश्य मात्र विकास करना ही नहीं है । समाज अपनी रचना के द्वारा नारी के चरित्र का विकास करता है । वह उसमें सत्य विनय स्वावलम्बन कर्तव्य-परायणता तथा नम्रता आत्मत्याग सहनशीलता उत्पन्न होना धैर्य रचना आत्म-विश्वास प्रथम आदि गुणों का विकास करता है । समाज नारी के विकास को सभी समस्याओं की ओर सजग रहता है ताकि नारी का व्यक्तित्व एक परिपूर्ण और परिष्कृत व्यक्तित्व के रूप में परिवर्तित हो जाय ।

व्यापक सेवा

शिक्षा का उद्देश्य सेवा करना है घर के भीतर अथवा घर के बाहर, और दोनों स्थानों पर । राजकीय सामाजिक राजनैतिक अथवा

साहित्यिक क्षेत्र में नारी अपनी सेवाएँ अर्पित कर सकती है। नौकरी के क्षेत्र में महिलाएँ टाइपिस्ट, अध्यापिका, नर्स, टेलीफोन और ट्रंक ऑपरेटर, टिकट चेकर, पुस्तक विक्रेता, दुकानदार, पुलिस आदि का कार्य भार लिया करती हैं। लेखक इन स्थानों पर काम करनेवाली बहिनों की जीवन-झलक और उनके कर्तव्यों पर अपनी रचना तैयार कर सकता है। ऐसी रचनाओं को सुनकर सम्पूर्ण महिला-समाज में साहस, आत्म-विश्वास और आत्म-गौरव का उदय भी होता है। खेत और खलिहान तथा कल और कारखानों में काम करने वाली महिलाओं का जीवन तो और भी अधिक प्रेरणादायक और उत्साह दिलाने वाला होता है।

कला-साहित्य

कला की साधना भी नारी के लिए एक सच्चा आकर्षण है। वे संगीत-सेवा, काव्य-साधना, चित्रकारी, मूर्तिकला आदि ललित कलाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं। वे पत्रकार भी बन सकती हैं। महिला संसार के कार्यक्रम में इन कलाओं पर इस उद्देश्य से प्रकाश डाला जाता है कि महिला-श्रोता इन कलाओं की साधना करने को उत्साहित और तत्पर हों। एक सुसंस्कारी जीवन के लिए कला और सौन्दर्य की पूजा अति आवश्यक है।

घर के बाहर महिलाओं के कार्यक्षेत्र की सीमा निर्धारित करना कठिन है। लेखक प्रसंग और नारी की रुचि और आवश्यकता के अनुकूल उपयोगी विषयों पर रचना तैयार कर सकता है।

बौद्धिक बुभुक्षा

महिलाएं किन किन वस्तुओं, व्यक्तियों और घटनाओं में रुचि लेती हैं? कौन कौन सी बातें उनका ध्यान आकर्षित करती हैं? कौन कौन सी प्रवृत्तियाँ और इच्छाएँ उनमें काम कर रही हैं? ऐसे ही प्रश्नों के प्रकाश में लेखक अपनी रचना को श्रोताओं के लिए आकर्षक और रुचिकर बना सकता है।



प्रत्येक महिला बच्चों से स्नेह करती है। यही नहीं विवाहिता और यहाँ तक कि अविवाहित कुमारियों तक में यह प्राकृतिक प्रवृत्ति कुछ न कुछ मात्रा में विद्यमान रहती है। इसी प्रकार प्रायः प्रत्येक स्त्री अपने साज सिंगार और व्यक्तिगत सौंदर्य पर बड़ा ध्यान देती है। वस्त्र वेश भूषा और आभूषणों आदि से वह सखी-सहेलियों में आत्म प्रदर्शन करती है। आत्म-प्रदर्शन के साथ ही प्रायः महिलाओं में स्पर्धा और ईर्ष्या की भावनाएं भी प्रबल होती हैं। महिलाओं के व्यवहार का सूक्ष्म अवलोकन करके लेखक महिलाओं की अन्य प्रवृत्तियां और रुचि-अरुचि का पता लगा सकता है। तब फिर लेखक महिलोपयोगी रचना की भाव सामग्री में उन बातों का समावेश कर सकता है जो महिलाओं को मधुर और मनोरंजक लगती हैं। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए वह रचना में उन बातों का भी समावेश करता है जो महिलाओं के दैनिक जीवन और कार्य-क्षेत्र में महत्व रखती हैं। ऐसा करने पर वह रचना महिला-संसार की आवश्यकताओं के अनुकूल बन जाती है।

निषेध और प्रतिबन्ध

महिला-संसार की रचना के विषय का महिलाओं की आवश्यकता के अनुकूल होना ही पर्याप्त नहीं है। वह महिलोपयोगी रचना हो। उसके भावों और विचारों में किसी पुरुष का मस्तिष्क कार्य करता हुआ न दिखाई दे। उसमें नारी-जीवन की घटनाओं समस्याओं और आवश्यकताओं पर महिलाओं के दृष्टिकोण से विचार किया जाता है। कभी कभी यह भी कहा जाता है कि महिलाओं के लिए प्रकाशित होने वाली रचना महिलाओं के द्वारा ही लिखी होनी चाहिये। यह कथन पूर्णरूपेण सत्य नहीं है। फिर भी इसमें एक बड़ी सचाई अवश्य निहित है। महिलाओं के जीवन में अनेक ऐसे विषय हैं जिनपर पुरुष लेखकों की रचना स्वीकार नहीं की जा सकती। उनका प्रकाशन अनुचित और अविश्वसनीय सा माना जायगा। "रोते बच्चे को कैसे चुप करें" यह महिलाओं के लिए एक उपयोगी विषय है। इस

विषय पर किसी पुरुष लेखक की रचना सफल न हो सकेगी उसके विचार अस्वाभाविक और उसका प्रयास अनुचित होगा । यही क्यों इस विषय पर यदि कोई कुमारी कन्या कुछ लिखे तो उसकी रचना भी अधिकारपूर्ण नहीं होगी । उसमें अनुभव का अभाव होगा । वह रचना स्वाभाविक हो सकती है परन्तु उसमें बहिन का ज्ञान होगा माता की अन्तर्दृष्टि नहीं होगी । इस विषय पर एक शिक्षित माता अधिकार पूर्ण रचना कर सकती है । ऐसे ही अनेक अन्य विषय हैं जिन पर महिला लेखिकाएँ ही उत्तम और समुचित रचनाओं का निर्माण कर सकती हैं ।

महिला श्रोताओं के सम्मुख ऐसी बातें भी नहीं रखनी चाहिये जो व्यावहारिक न हों । महिलाएं हर सुझाव का प्रयोग करने में तत्पर रहती हैं । यदि उन्हें कोई शून्य और असंभव बात बताई गयी तो वे महिला-संसार के कार्यक्रम में रुचि न दिखायेंगी । रेडियो-विभाग ऐसी रचना स्वीकार भी नहीं करेगा जिसमें अव्यावहारिक सुझावों का समावेश किया गया हो ।

कभी कभी लेखक नारी अधिकारों की माँग पर अपनी रचना में भावुकता का प्रदर्शन करते हैं । भावावेश से परिपूर्ण रचनाएं रेडियो के अनुकूल नहीं होती हैं । उनके विषय पर सतुलित मन से विचार करना आवश्यक है ।

महिलाओं की भाषा

महिलाओं के कार्यक्रम में महिलाओं के विषय पर महिलाओं की भाषा में विचार किया जाता है । महिलाओं द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली भाषा को आप ध्यान से सुनिये । उनकी अपनी शब्दावली होती है । अधिकतर वे विशेष प्रकार के मुहावरों कहावतों और सांस्कृतिक कथाओं एवं लोकोक्तियों का प्रयोग भी करती हैं । वे सरल वाक्यों का प्रयोग करती

है। स्कूल के अध्यापकों और वकीलों के समान उनके वाक्य अधिक लम्बे और जटिल नहीं होते उनकी वाक्य रचना शास्त्रीय नहीं होती।

महिलाएं गंभीर भाषा का प्रयोग भी नहीं करती हैं। मीठी चुटकी व्यंग और हास्य उनकी शैली की विशेषताएँ हैं। इसलिए जिस कृति की भाषा में जितनी अधिक हँसाने की क्षमता होगी वह रचना श्रोताओं में उतनी ही अधिक लोक-प्रिय बन सकेगी।

रचना का रूप

भाषा शैली का एक और पहलू है। महिलोपयोगी विषय का वार्ता रूपक भाषण आत्मानुभव आदि में से किस रूप में प्रकट करना उचित है? साधारणतया लेखक ऐसी शैली प्रयोग करता है जिससे मानव कार्य व्यापार का सजीव चित्र प्रस्तुत किया जासके यथा वार्ता आत्मानुभव डायरी के पृष्ठ अथवा एक पात्रीय रूपक (मोनो ड्रामा)। एक पात्रीय रूपक में एक व्यक्ति अपने मन में आने वाले विचारों और भावों की अभिव्यक्ति के लिए अभिनय सा करता है। अपने से बातें करता है प्रश्न पूछता है शंकाएँ उठाता है और उनका समाधान करता हुआ कथा को आगे ले जाता है।

रूपक की रचना करते समय महिला संसार के सीमित समय का ध्यान रखना आवश्यक है। महिला-संसार के लिए लिखे हुये रूपक के प्रसारण में १५ से २० मिनिट से अधिक समय नहीं लगना चाहिये।

महिलाओं के कार्यक्रम में विदुषी महिला से भेंट अथवा उसका शब्द-चित्र (स्केच) भी प्रस्तुत किया जा सकता है। शब्द-चित्र में उसकी वेश भूषा जीवन, कार्य करने का ढंग आदि का एक रोचक ब्यौरा तैयार किया जा सकता है। बाल-पालन के विषय सम्वाद के रूप में लिखे जा सकते हैं।

शैली के विषय में ये बातें संकेत के समान हैं। यह तो लेखक की प्रतिभा और सूझबूझ पर निर्भर है कि किस प्रकार की शैली का प्रयोग वह किस विषय के लिए सफलतापूर्वक कर सकता है।

महिलाओं के लिए रेडियो से विशेष कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है। इसके लिए रचना के विषय का चुनाव नारी के कार्यक्षेत्र और उसकी प्रकृति को ध्यान में रखकर किया जाता है। रचना का उद्देश्य महिला समाज को कार्यक्षम गरिमावान और बहुश्रुत बनाना है। उसकी रचना रोचक आकर्षक और व्यावहारिक होती है। उस प्रोग्राम में महिलाओं की समस्याओं पर महिलाओं की भाषा में महिलाओं के दृष्टिकोण से विचार किया जाता है। उसमें महिला जीवन की झलक होती है।

के समान नागरिक हैं। उसे नागरिक अधिकारों और कर्तव्यों का बोध कराया जाय। किसान के समान भी उसे नैतिक गार्हस्थिक, तथा सामाजिक कर्तव्यों स्वास्थ्य आदि से परिचित कराया जाता है। अतएव लेखक इन क्षेत्रों से अपनी रचना के लिए समीचीन विषय चुन सकता है। वह उन्हें *लोकतान्त्रिक जीवन यापन के नियम भी बता सकता है।*

श्रमिकों के प्रोग्राम का एक और महत्व का पहलू है। मजदूरों को कार्यक्षम बनाया जाय। उनके जीवन से सम्बन्धित कल-कार खानों के प्रश्नों, समस्याओं और कार्य करने की प्रणाली पर लेखक प्रकाश डाला जा सकता है। इन विषयों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए मजदूर उत्सुकता और रुचि भी प्रदर्शित करते हैं। उनमें मजदूरों के जीवन की झलक होनी आवश्यक है उसमें मजदूरों के हथौड़े और उसके हृदय की धड़कन सुनायी दे। उस विषय को समझकर ऐसा प्रतीत हो कि यह श्रमिकों का कार्य-क्रम है। रचना में मजदूर के जीवन और उसकी मजदूरी की बातों का समावेश किया जाता है।

मजदूरों की कार्य क्षमता

श्रमिक को अपना श्रम प्रिय है। जो रचना उसे और अधिक कार्य-कुशल योग्य और अनुभवी बनाती है उसे वे ध्यान और धैर्य से सुनते हैं। लेखक उन्हें कम परिश्रम से अधिक कार्य करने और अधिक धन कमाने का ढंग भी बता सकता है। काम को सरल ढंग से सम्पन्न करने के साधन भी बताये जायें तो श्रमिक श्रोताओं की दृष्टि में उस रचना का मूल्य सौ गुना बढ़ जायगा। यथा जब कोई मजदूर अपनी स्वाभाविक गति का उल्लंघन करके द्रुततर गति से हाथ-पांव चलाता है तो वह तुरन्त थक जाता है। इसी प्रकार उन्हें यह भी बताया जा सकता है कि किस प्रकार अनुत्पादक गति चेष्टाओं से बचा जा सकता है किस प्रकार लयमय गोलाकार और द्रुततर

बनि की चेष्टाएँ मजदूर के लिए सरल और सुखकर होती हैं और किस प्रकार मध्यकाश के समय मनोरंजन की अवस्था में काम से थकान दूर हो जाती है। इसी प्रकार लेखक उन्हें यह भी बता सकता है कि अपने औजारों को किस प्रकार से चलाने से क्या लाभ है और दुर्घटनाओं से कैसे बचा जाय अथवा चोट लग जाने पर तत्काल क्या उपचार किया जा सकता है। प्रत्येक प्रकार के कार्य को उचित और ढंग से करने के लिए प्रत्येक मजदूर कुछ विशेष बातों का ध्यान रखता है। लेखक य बातें बता सकता है और वह मजदूरों की कुशलता कार्यक्षमता और उन्नति म सहायक हो सकता है।

मजदूरीका महत्व

औद्योगिक धन्धों के मजदूर प्राय अपने काम से असंतुष्ट रहते ह। व समझते हैं उनके काम का कोई महत्व नहीं उनके साथ अन्याय हो रहा है और वे किसी बड़ी व्यवस्था के पुर्जे बन गये हैं। परन्तु प्रत्येक मजदूर का कार्य महत्व का है। लेखक उन्हें बता सकता है कि उनके स्वेद और श्रम से कितनी सुन्दर वस्तु का निर्माण हुआ है। उस वस्तु का निर्माण करने में उनका भी हाथ है। सम्पूर्ण उत्पादन-कार्य में मजदूर के कार्य के महत्व का एक सजीव चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है। इस भाव को समझ लेने पर मजदूर अपने काम को रुचि साहस और श्रद्धा से सम्पन्न करने को तत्पर रहेंगे। व अपने काम से स्वयं को एकीभूत कर लेंगे। इस उद्देश्य की पूर्ति क लिए लेखक औद्योगिक धन्धों में चालू की जानेवाली हितकारी योजनाएँ श्रमिकों को समझा सकता है उनके संशय दूर कर सकता है और अन्य देशों के मजदूरों की अवस्था और जीवन की उपयोगी बातें भी बता सकता है। इसी प्रकार कल-कारखानों के विकास और उत्पादन के समाचार भी मजदूरों को सुनाये जा सकते हैं।

सामाजिक प्राणी

मजदूर एक सामाजिक प्राणी है। वह कल-कारखाने के मजदूर संघ का सदस्य ही नहीं अपितु कल-कारखाने के प्रत्येक सदस्य के सम्पर्क और सहयोग में कार्य करता है। वह इस व्यापकतर समाज की सीमा आचार-विचार करता है। उसे कारखाने के दूसरे मजदूरों के साथ सहयोग सद्भावना सहनशीलता और मैत्री का बर्ताव करना पड़ता है। परन्तु अनेक मजदूर अविश्वास मावुकता उन्माद अथवा जिनकी स्वभाव के कारण अपने सहयोगियों से झगड़ते रहते हैं। लेखक अपनी रचना के द्वारा इस आपसी फूट को दूर कर सकता है।

व्यावहारिक भाषा

मजदूर श्रोताओं के लिए लिखी हुयी रचना की भाषा मजदूरों के ज्ञान विकास और शिक्षा के अनुकूल होती है। इस भाषा में मजदूरों द्वारा काम में आये वाले वाले शब्दों का प्रयोग किया जाता है। लेखक यह पता लगा सकता है कि किन किन शब्दों को मजदूर बिगाड़ कर बोला करते हैं। मजदूरों द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी किया जाता है। सुनने पर यह कार्यक्रम मजदूरों का कार्यक्रम ही प्रतीत होना चाहिये।

अन्य आवश्यकताएँ

श्रमिकों के कार्यक्रम को रोचक स्वाभाविक और आकृष्ट बनाने के लिए कभी कभी एक उपाय और किया जाता है। सम्वाद, वार्ता अथवा नाटक में ऐसे व्यक्ति अथवा पात्र का समावेश किया जा सकता है जो चार बातों में मजदूरों के लिए श्रद्धा और आदर के पात्र हों। कल-कारखाने में प्राय मिस्त्री को ऐसा ही स्थान मिला हुआ है। मिस्त्री अपने अनुभव और सेवा ज्ञान और सहयोग के कारण मजदूरों द्वारा श्रद्धा से देखा जाता

स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। हारा-थका मजदूर इसे सुनकर आनन्द भी प्राप्त करता है।

विभाग की ओर से

मजदूर श्रोताओं के लिए जो समाचार, प्रसारित किये जाते हैं वे रेडियो विभाग में लिख लिये जाते हैं रेडियो के बाहर से समाचार स्वीकार नहीं किये जाते।

श्रमिकों के कार्यक्रम में व्यापक जन-शिक्षण और जन-मनोरंजन के उद्देश्य को लेकर रचनाएँ तैयार की जाती हैं। इसमें मजदूरों की समस्याओं पर मजदूरों की भाषा में प्रकाश डाला जाता है। इसके द्वारा सामान्य मजदूर को स्वस्थ और प्रगतिशील मानव के रूप में लाने का प्रयत्न किया जाता है। लेखक मशीन को नहीं मशीन को चलाने वाले मानव को देखता है। उसका सर्वतोमुखी विकास करना ही लेखक का उद्देश्य है।

सहायक पुस्तकें

इस पुस्तक की रचना में निम्नलिखित पुस्तकों और प्रकाशनों की सहायता भी ली गयी है।

अंग्रेजी

1 Broadcasting by William Wittaker
2 How to Write for Broadcasting by Howard
3 Writing for Radio by Robert Kainghar
4 Radio Play by Felix Felton
5 Broadcasting by Hilda Matheson
6. Broadcasting by Seth Drucquer
7 Good English How to Write and Speak.
8. English Language and Literature Odham
9 The Fun of Writing, S P B Mais.
10. A Guide to Article Writing, G T Mais.
11 Writers Desk Book A & C Blake Ltd
12. The Craft of Story Writing: Donald Maconochie
13. Three Years of Radio Pakistan Directorate of Public Relations Radio Pakistan Karachi.

हिन्दी

१ नवरस—श्री गुलाब राय एम ए
२. शैली—पं० करुणापति त्रिपाठी
३. साहित्य की आलोचना—डा० रामकुमार वर्मा
४ रूपक रहस्य डा०—गुलाबराय

"रेडियो के लिए कैसे लिखें"

पर

विद्वानों की सम्मतियां

१ डाइरेक्टर जनरल ऑल इंडिया रेडियो, दिल्ली—

आपकी पुस्तक की पाण्डुलिपि अभिरुचि के साथ पढ़ी गयी। मुझे विशेष इस बात की प्रसन्नता है कि आपका प्रयास हिन्दी में है। मैं आपके इस प्रयास की सम्पूर्ण सफलता की कामना करता हूँ।

२ डा० नारायणन मेनन ऑल इंडिया रेडियो दिल्ली—

"मैंने आपकी पुस्तक पढ़ी। मैंने पुस्तक का सार समझ लिया है और आपने जो कठोर परिश्रम इसकी रचना में किया है उसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ।

३ सेठ श्री गोविन्ददास, भारतीय संसद के सदस्य और हिन्दी साहित्य सम्मेलन के भूतपूर्व विद्वान् सभापति—

आपने रेडियो के लिए कैसे लिखें विषय पर पुस्तक लिखकर एक आवश्यकता की पूर्ति की है।

४ श्री उदयशंकर भट्ट हिन्दी के नाटककार और ऑल इंडिया रेडियो दिल्ली के हिन्दी परामर्शदाता—

श्री अमरनाथ चंचल द्वारा लिखित "रेडियो के लिए कैसे लिखें" पुस्तक का मैं अभिनन्दन करता हूँ। यह पुस्तक न केवल इस विषय में रुचि रखने वाले लोगों के लिए ही उपयोगी होगी अपितु यह एक विशिष्ट आवश्यकता की पूर्ति भी करती है।"
